

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180618

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83.1
K24 A . Accession No. H 2345.

Author केदारनाथ. सह.

Title आदर्श हिन्दी कथानिया 195

This book should be returned on or before the date
marked below.

आदर्श हिन्दी कहानियाँ

सम्पादक

श्री केदारनाथ भट्ट, एम० ए०

प्रकाशक

अजन्ता प्रकाशन,
लखनऊ

१९४६

}

}

मूल्य २)

कहानी का प्राचीन रूप

अग्ने देश में कहानी का इतिहास बहुत पुराना है। वेदों में अनेक कथाओं के सूत्र मिलते हैं। ऋग्वेद की यम-यमी संवाद कहानी चिर प्रसिद्ध है। ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और जातक कथाओं में कहानियों का रूप कुछ और विस्तृत हो गया है। संस्कृत साहित्य में बृहत्कथा मंजरी, कादम्बरी तथा दश कुमार-चरित आदि कहानियों का महत्त्व आज भी सर्वमान्य है। जैन साहित्य में आख्यायिकायें और कहानियाँ भरी पड़ी हैं। जैनों के पद्म पुराण और हरिवंश पुराण प्राचीनतम कहानियों के आदि-स्रोत हैं। कथा-सरित्-सागर में राजा उदयन की कथा की चर्चा है। रामायण, महाभारत तथा सूरसागर तो आख्यायिकाओं के रत्नाकर हैं। सम्राट विक्रमादित्य, महाराज भर्तृहरि और राजा भोज की कथाओं का क्षेत्र केवल साहित्य की सीमा में ही समाप्त नहीं हो गया, वरन् किंवदन्तियों तथा जनश्रुतियों में प्रविष्ट होकर हमारी संस्कृति और हमारे इतिहास का एक गौरवपूर्ण इतिहास बन गया है।

महाराज पृथ्वीराज तथा आलहा-उदल की जीवन-गाथाओं और उनके युद्धों के वर्णन में कथा के जो अनेक सूत्र बिखरे पड़े हैं, उनके आधार पर जन-समाज में नाना प्रकार की कथायें प्रचलित हैं। पंचतन्त्र और द्वितीयपदेश में प्रत्येक कथा एक न एक नीति का निरूपण करती हुई दर्शन देती है। पौराणिक कथाओं का मुख्य उद्देश्य जीवन-दर्शन रहा है। इन अनेकों कथाओं में हमारी प्राचीन सभ्यता की भक्तिक तथा संस्कृति की भाँकी के साथ-साथ तत्कालीन समाज की विकासशाल रुचि का भी प्रभाव स्पष्ट अंकित है। इनसे विदित होता है कि हमारे पूर्वज कैसे मनस्वी, दीर्घ-जीवी, त्यागी एवं धीर-वीर थे और जीवन के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण कितना

व्यापक, विस्तृत और व्यवहारशील था। आज इन कथाओं में हमारे बुद्धिजीवी वर्ग को अतिरंजना, मनगढ़ान्त कपोलकल्पना, असत्य तथा असम्भावना की गन्ध मिलती है। किन्तु उस युग की जनता उन पर पूर्ण आस्था रखती थी और उस युग का साहित्यिक उनकी रचना उमी विश्वास, सन्तोष और बल के साथ करता था जिस प्रकार आज का साहित्यिक अपनी रचना-सृष्टि करता है।

आधुनिक कहानी की परिभाषा

आज के वैज्ञानिक युग में जब कि हमें कम से कम अवकाश मिलता है, कहानी ही मनोरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है। इस तीव्रगामी युग में मनुष्य को इतना अवकाश नहीं कि वह निरन्तर लम्बे-चौड़े उपन्यासों को पढ़ने की ओर उन्मुख रहे। कहानी के अत्यधिक प्रचलन का सबसे बड़ा यही कारण है। मनुष्य समाज में अपना विकास करता है, अतः वह समाज के व्यक्तियों के सम्बन्ध में सदैव कौतूहलशील रहता है। यह कौतूहल मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है।

जो व्यक्ति अधिक भीड़-भाड़ पसन्द नहीं करते, वे भी सामाजिक प्राणी हैं, चाहे उनके मित्र कितने भी कम हों। वे उन थोड़े से परिजनों के उत्थान-पतन, सम्पत्ति-विपत्ति तथा सुख-दुःख के विषय में उत्सुक रहते हैं। अपने निकटस्थ व्यक्तियों के सम्बन्ध में यह कौतूहल की भावना ही जो कि आधुनिक कहानी में पूर्णरूपेण व्यक्त होती है, उसकी सर्वप्रियता का अलौकिक कारण है।

आज साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं की भाँति कहानी भी पाश्चात्य देशों से अत्यधिक प्रभावित है, और हिन्दी के कहानीकारों ने एडगर एलिन 'पी' की कहानी की परिभाषा को लेकर ही अधिकांश कहानियाँ लिखी हैं। 'पी' महोदय की परिभाषा इस प्रकार है— "गल्प एक ऐस

आख्यान है जो इतना लघु है कि एक बैठक में समाप्त हो सके और जिसका उद्देश्य पाठक पर एक ही प्रभाव को विशेष रूप से उत्पन्न करना हो। उसमें उन सब बातों को स्थान नहीं मिलता, जो उस निर्दिष्ट भाव को अग्रसर करने में सहायक न हो। छोटी कहानी अपने में पूरा होती है।”

हिन्दी के प्रख्यात आलोचक रायबहादुर डा० श्यामसुन्दरदासजी की परिभाषा इस प्रकार है—“आख्यायिका एक निश्चित लक्ष्य या प्रभाव को लेकर लिखा जाने वाला नाटकीय आख्यान है।” बाबू गुलाबरायजी की परिभाषा सरल और अनेक परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर बनी है। अतः उसे उद्धृत करना भी श्रेयस्कर होगा। बाबूजी का मत है — ‘छोटी कहानी एक स्वतः पूर्ण रचना है, जिसमें एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति-केन्द्रित घटना या घटनाओं के आवश्यक उत्थान-पतन और मोड़ के साथ पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने का वर्णन होता है।’

कहानी में जीवन के व्यापक दृष्टिकोण का अपनाने का मोह नहीं। वह तो जीवन की एक झलक या झोंकी है। किन्तु उसके कलेवर में जीवन की वह क्षणिक झोंकी प्रभावपूर्ण ही होती है। कहानीकार का समस्त आलोक जीवन के एक अंश पर ही केन्द्रित रहता है किन्तु वह उसके प्रभाव को तीव्र बना देता है।

एक उच्चकोटि के कला शास्त्री मोपासां (फ्रांस के अमर कहानीकार) का मत है कि कहानी एक प्रकार से उपन्यास का ही छोटा रूप है। कहानी और उपन्यास दोनों में ही कई बातों की समानता है। दोनों ही विधाएँ मानव-जीवन पर कलात्मकरूप से प्रकाश डालती हैं। कुछ समानताएँ होते हुए भी दोनों की अपनी-अपनी निजी विशेषताएँ हैं, जो कि एक को दूसरे से पृथक् करती हैं। दोनों में अंतर केवल आकार का ही नहीं है।

कहानी को छोटा उपन्यास अथवा उपन्यास को बड़ी कहानी कहना सर्वथा न्याय-संगत नहीं। यह कहना तो मेंढक को छोटा बैल और बैल

को बड़ा मंदक कहने के समान है। दोनों के संगठन और शारीरिक संस्कार में अन्तर स्पष्ट है। वृषभ को चलते समय चारों पैरों पर समान बल देना पड़ता है, जबकि दादुर उछल-उछलकर मार्ग पार करता है। इसी प्रकार कहानीकार बहुत कुछ छोड़ता हुआ छल्लों मारकर चलता है। इस प्रकार उपन्यास और कहानी के गति क्रम में भेद है।

कहानी और उपन्यास का अन्तर बतलाते हुए श्रीयुत प्रेमचन्दजी ने लिखा है—“उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रों का समूह है। आख्यायिका एक घटना है। अन्य बातें सब उसी घटना के अन्तर्गत होती हैं। इस विचार में उसकी तुलना नाटक में की जा सकती है। उपन्यास में आप चाहें जितने स्थान लायें, चाहे जितने चरित्र खायें, पर आख्यायिका में इस बाहुल्य के लिए स्थान नही।” उपन्यासकार पूर्ण चिड़िया ही नहीं; वरन् जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है आसपास के सब पक्षियों पर दृष्टिपात करता है, किन्तु कथाकार धनुर्विद्या-विशारद वीर अर्जुन की भाँति अपने निशाने को अच्छूक बनाने के लिए चिड़िया की केवल आँख को और अधिक से अधिक मिर को जिसमें आँख अवस्थित है, लक्ष्य कर तीर छोड़ता है।

कहानीकार अपने पाठक को अन्तिम संवेदना तक तुरन्त ले जाता है और एक दम यवनिका उठाकर सज्जित भाँकी की अनुम एवम् मोहक छवि से मन्त्रमुग्ध कर देता है। बीच-बीच में अपने रहस्य का उद्घाटन करना उसे अभिप्रेत नहीं, एक दो सङ्केत चाहे वह कर दे; किन्तु अपने रहस्य को अन्तिम क्षण तक उदरस्थ रखता है। बीच के सङ्केत भी अन्तिम संवेदना से सार्थक हो जाते हैं। कथा का जीवन-रस उसकी एकतथ्यता है और वही उपन्यास से उसे पृथक् करता है।

वातावरण की व्यापकता, जीवन की सर्वाङ्गीणता, प्रासङ्गिक कथाओं के तारतम्य के कारण कथा-प्रवाह का बहुशाखा होकर अन्त की ओर

प्रवाहमान होना, पात्रों का आधिक्य आदि बातें जो उपन्यास में श्लाघ्य या क्षम्य समझी जाती हैं, कहानी में अप्राप्य हो जाती हैं। कहानी में चाहे वाह्य रूप में हो अथवा आन्तरिक रूप में, कथानक, चरित्र-चित्रण और वातावरण आदि सब होते हैं, परन्तु मुख्यता एक को ही मिलनी चाहिए। अवशेष दो बहुत गौण हो जाते हैं। उपन्यास में तीनों को उचित विस्तार मिल जाता है यद्यपि मुख्यता एक को ही रहती है। सभी तत्त्वों के यथोचित समावेश पर उपन्यास की सफलता आधारित है।

कहानी में शैली अपनी संचिप्ता के कारण तथा आहार की लघुता के कारण अधिक व्यंजना प्रधान होती है। उसमें 'गागर में सागर' और 'बिन्दु में सिन्धु' की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में व्यंजना की मात्रा अधिक रहती है और क्योंकि व्यंजना काव्य का प्राण है, इसलिये कहानी काव्य के अधिक समीप आ जाती है। कहानी के काव्यत्व में उसकी एकमेयता के कारण स्थिरता रहती है किन्तु उपन्यास में व्यापकता के कारण उसका काव्यत्व विखरा-सा रहता है। जो कहानियाँ अभ्ययनकक्ष अथवा शयनालय में पढ़े जाने के उद्देश्य से लिखी जाती हैं उनमें व्यंजना और विचार की मात्रा अधिक रहती है।

कहानी प्रगीत काव्य नहीं है क्योंकि उसमें संगीत नहीं होता, किन्तु अपनी भेद्य की एकता और दृष्टिकोण की वैयक्तिकता के कारण वह प्रगीत काव्य के अधिक निकट आ जाती है। कहानी में संगीत का अभाव होता है अतः वह गद्य काव्य के अधिक निकट है, किन्तु वह गद्य काव्य में उन्हीं प्रकार भिन्न है जिस प्रकार प्रगीत काव्य में। उसमें घटना की अपेक्षा रहती है, गद्य काव्य में नहीं। कहानी रेखाचित्र के बहुत निकट होते हुए भी उसमें बहुत भिन्न है। कहानी में गन्यात्मकता रहती है जब कि रेखाचित्र में वर्णन का प्राधान्य होता है। कहानी में वर्णन के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक कथन भी रहता है।

आधुनिक कहानी का प्रारम्भ तथा विकास

आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ सन् १९०० ई० में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के प्रकाशन से होता है। सरस्वती में तो सेक्सपियर के अनेक नाटकों के अनुवाद भी कहानी रूप में प्रकाशित हुए। साथ ही साथ इसमें बहुत से संस्कृत नाटक भी कहानी रूप में प्रकाशित हुए जिनमें 'रत्नावली' और 'मालविकाग्निमित्र' की कहानियाँ अत्यन्त मनोरंजक प्रमाणित हुईं। सरस्वती के प्रकाशन के पहले ही गदाधरसिंह ने बाण की कादम्बरी का एक अत्यन्त सुन्दर अनुवाद एक बड़ी आख्यायिका के रूप में प्रस्तुत किया। यह अनुवादित तथा रूपान्तरित रचनाओं का युग ही आधुनिक कहानियों का प्रारम्भिक रूप है। जून १९०० ई० में सरस्वती में श्री किशोरीलाल गोस्वामी की हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक आधुनिक कहानी 'इन्दुमती' प्रकाशित हुई। यह कृति पूर्ण रूप से मौलिक नहीं, क्योंकि इस पर शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक टेम्पेस्ट की छाप बहुत स्पष्ट है, परन्तु इमे गोस्वामीजी ने पूर्ण रूप से भारतीय वातावरण के अनुरूप बना दिया है। इस प्रकार टेम्पेस्ट की छाया लेकर एक राजपूत कहानी के आधार पर हिन्दी की सर्वप्रथम मौलिक कहानी की सृष्टि हुई।

इसके पश्चात् अन्य अनेक कहानियाँ अनुवादित, रूपान्तरित और मौलिक भी सरस्वती तथा सुदर्शन में निकलती रहीं। १९०० ई० से १९१० तक आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रयोगात्मक युग था जब कि न तो कहानी की कोई निश्चित परम्परा थी और न उसके साहित्यिक रूप तथा शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित आदर्श सामने था। मार्च १९०६ में सरस्वती में 'जम्बुकी न्याय' कहानी प्रकाशित हुई जो कि पंचतंत्र और हितोपदेश की भाँति दूरी फूटी। भाषा में छन्दोबद्ध एक उपदेशपूर्ण कथा है, और जो ईशप की कहानियों की याद दिलाती है। विद्यानाथ शर्मा की कहानी

‘विद्या बहार’ मार्च सन् १९०६ में सरस्वती में प्रकाशित हुई। इसी वर्ष मई की सरस्वती में ‘कुलीनाथ पांडे’ नाम की कहानी छपी। अगस्त १९१० की सरस्वती में श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त ने ‘नान्यानवे का फेर’ नाम की एक सुन्दर कहानी लिखी।

दूसरी ओर माधव मिश्र ‘सुदर्शन’ में कहानियाँ लिख रहे थे जो कि प्राचीन काल की आरूप्यायिकाओं से प्रभावित थी। श्री सूर्यनारायण दीक्षित ने मार्च सन् १९०६ की सरस्वती में जैमिनि पुराण के आधार पर ‘चन्द्रहाम का अद्भुत उपाख्यान’ लिखा। ये तो प्राचीन परम्परा के क्षेत्र में नूतन प्रयोग थे। इनके अतिरिक्त एक ओर ‘बंग महिला’, ‘पार्वती-नन्दन’, ‘उदयनारायण वाजपेयी’ इत्यादि लेखक बँगला, फ्रेंच, जर्मन और अङ्ग्रेजी भाषा में कहानियों का अनुवाद और रूपान्तर उपस्थित कर रहे थे; दूसरी ओर कर्नल जेम्स स्ट्रिट के ‘राजस्थान’ तथा ‘टेरल’, ‘मैकमिलन’ आदि अङ्ग्रेज लेखकों के वीरता और प्रेम सम्बन्धी अङ्ग्रेजी उपन्यासों के आधार पर मध्यकालीन राजपूतों, गराठों और वीर पठानों की वीरता और प्रेम की कहानियाँ लिखी जा रही थी। शृन्दावनलाल वर्मा ने सितम्बर १९०६ में ‘राखी बन्ध भाई’ और अक्टूबर १९१० में ‘तातार और एक वीर राजपूत’ नामक कहानियाँ सरस्वती में लिखा और श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी ‘नवली किला’ नामक एक कहानी दिसम्बर १९०६ की सरस्वती में गीतिका छन्द में लिखी, जिसमें बूँदा के हाड़ा कुम्भ की अद्भुत वीरता और त्याग का वर्णन है। हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी इन्दुमती का प्रस्तुत संग्रह में संकलित किया गया है।

१९०० से १९१० के बीच के प्रयोगात्मक युग की सर्वोत्कृष्ट और सुन्दरतम रचना ‘यज्ञ महिला’ की ‘दुलाई बाना’ कहानी थी जो कि सरस्वती में मई सन् १९०७ में प्रकाशित हुई थी। यह रचना प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत है। इस कहानी में प्रतिदिन के जीवन की एक संधारणा

घटना लेकर स्थान-चलन और यथार्थवादी चित्रण की सहायता से एक प्रभावशाली कहानी की सृष्टि की गई है। सन् १९११ ई० में काशी से 'इन्दु' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ और तब से कहानियों की एक विच्छिन्न धारा और परम्परा चल निकली। प्रसादजी ने नवीन युग का द्वार हिन्दी में खोला था। १९११ में प्रसादजी की सर्व प्रथम कहानी 'ग्राम' 'इन्दु' में प्रकाशित हुई और हास्यरस के प्रख्यात लेखक जी० पी० श्रीवास्तव की कहानी भी उसी वर्ष उसी पत्र में निकली। उसी वर्ष 'भारतमित्र' में 'उसने कहा था' कहानी के अमर लेखक चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रथम कहानी 'मुखमय जीवन' भी प्रकाशित हुई थी। १९११ ने हिन्दी को तीन उच्चकोटि के कहानीकार प्रदान किये, इस प्रकार आधुनिक हिन्दी कहानी का प्रारम्भ १९११ से ही समझना चाहिए।

१९१२ ई० में जगशङ्कर प्रसाद ने एक दूसरे ढङ्ग की कहानी का प्रादुर्भाव किया, जिसमें उनकी नाटकीय प्रतिभा और कवि हृदय को अपना कौशल दिखाने का उपयुक्त क्षेत्र मिला। 'रसिया वालम' प्रसाद की कहानी अप्रेल १९१२ में 'इन्दु' में प्रकाशित हुई थी। गद्य में यह एक खण्डकाव्य के समान है और फारसी के प्रेम-आख्यानो के बहुत ही निकट है। इस प्रकार की कहानियों का कथानक प्रतिदिन के जीवन की मनोरञ्जक घटनाओं और प्रसङ्गों के आधार पर नहीं; वरन् लेखक की कल्पना-शक्ति से प्रसूत होता है। प्रस्तुत पुस्तक में सगृहीत 'प्रसाद' की 'आकाशदीप' इसी ढङ्ग की कहानी है।

प्रेमचन्द्रजी की प्रथम कहानी 'पद्म परमेश्वर' जून सन् १९१६ में प्रथम बार सरस्वती में प्रकाशित हुई। इस कहानी के कथानक का क्रमिक विकास चरित्रों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के द्वारा हुआ न कि दैवी घटनाओं और संयोगों द्वारा। इसमें प्रधानता मनोविज्ञान की ही थी। यद्यपि दैवी घटनाएँ और संयोग प्रसंगवश गौण रूप में आ गये।

इसी प्रकार प्रेमचन्द्रजी की एक कहानी 'आत्माराम' में मनोवैज्ञानिक चित्रण अत्यन्त अद्भुत है और यह उनकी सर्वोत्तम कहानियों में से एक है।

कहानी के द्वितीय विकास में विजय होती है कला की। इसमें कहानी के रूप में कलाकार किसी सत्य की व्यंजना करता है। उदाहरण स्वरूप सुदर्शन लिखित 'कमल की बेटी' कहानी ली जा सकती है। यह एक कलापूर्ण रचना है जिसमें लेखक ने अपनी दिव्य दृष्टि से जीवन के चिरंतन सत्य को प्रत्यक्ष कर कहानी के रूप में प्रकट किया है, जो पुराण-कथा और रूपक-कथा से किसी प्रकार कम नहीं। इस प्रकार की पुराण-कथा अथवा रूपक-कथा की सृष्टि के लिए लेखकों ने ईसामसीद और स्वामी रामकृष्ण परमहंस लिखित पौराणिक और रूपक कथाओं में विशेष प्रेरणा प्राप्त की है। वर्तमान युग है बुद्धिवाद और संशयवाद का। सुदर्शन ने कमल की बेटी जैसी और भी कुछ सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत की जिनमें संसार की 'सबसे बड़ी कहानी' बहुत सुन्दर है। परन्तु हिन्दी के अन्य कहानी लेखकों ने ऐसी कलापूर्ण कहानियाँ नहीं लिखी।

चतुरमेन शास्त्री ने 'खूनी' नामक कहानी जनवरी १९२४ की 'प्रभा' में लिखी। इस कहानी में घटनाओं और प्रसंगों का कुछ भी महत्त्व नहीं, और यदि है भी तो केवल इसलिये कि इस प्रसंग ने खूनी के चरित्र में परिवर्तन उपस्थित किया। खूनी का चरित्र ही इस कहानी का प्राण है और स्वयं खूनी ही इसका केन्द्र-बिन्दु। चरित्र-प्रधान कहानियों के सर्वश्रेष्ठ लेखक प्रेमचन्द हैं। उनकी आत्माराम, बड़े घर की बेटी, बाँका गुमान, दफतरी, बूढ़ी काकी, सारंधा, मुक्ति मार्ग, अग्नि समाधि आदि कहानियों में लेखक की चरित्र-चित्रण सम्बन्धी अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिलता है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' में जो प्रस्तुत संग्रह में संकलित है, लहना जमादार के अपूर्व स्वार्थ-त्याग और बलिदान का वड़ा ही सुन्दर चित्रण है। वस्तुतः कहानी की

असाधारण सफ़लता का एकमात्र कारण वही है। प्रसादजी रचित 'भिखारिन' भी अत्यन्त सुन्दर है। बौशिक की सर्वोत्तम कहानी 'ताई' में रामेश्वरी (ताई) के चरित्र में अचानक परिवर्तन होता है।

प्रसादजी की आकाश दीप, पुरस्कार, प्रतिभ्वानि, चित्र, मन्दिर आदि कहानियों ने विकास का एक नया युग उपस्थित किया है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक अच्छे सामाजिक कहानी-लेखक हैं। इनकी बहुत सी कहानियों में शहरी जीवन के अच्छे चित्र आये हैं तथा इनकी कहानियाँ वार्तालाप प्रधान हैं। चण्डीप्रसाद, हृदयेश और जैनेन्द्रजी ने भी सुन्दर कहानियाँ लिखी हैं। चन्द्रगुप्तजी विद्यालंकार की 'चौबीस घण्टे' कहानी बहुत सुन्दर है। अज्ञेयजी वात्स्यायन नाम से कहानियाँ लिखते हैं और आपने कहानी-कला में निपुणता प्राप्त की है। आपकी अमरचल्लरी नाम की कहानी में एक पीपल वृक्ष का जीवन वृक्ष उपस्थित किया गया है, किन्तु एक विशेष काव्य-भावना को लेकर। श्री अन्नपूर्णानन्द तथा जी० पी० श्रीवास्तव विनोदपूर्ण कहानी लेखक हैं। श्री चतुरगेन शास्त्री ऐतिहासिक कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त हैं। उनका भाषा-प्रवाह प्रशंसनीय है। वर्तमान कहानी लेखकों में विनोदशंकर व्यास, उपेन्द्रनाथ अश्व, पारङ्गेय वेचन शर्मा उग्र, सियागमशरण गुप्त, राधाकृष्ण प्रसाद, वाचस्पति पाठक, पहाड़ी तथा यशपाल आदि महानुभावों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पन्तजी की पाँच कहानियाँ सुन्दर हैं तथा उनमें से एक में पान वाले का चित्र मनोरम बन पड़ा है।

हिन्दी की स्त्री लेखिकाओं में सुभद्राकुमारी चौहान, कमलादेवी, चौधरानी, उषादेवी मित्रा, शिवरानी देवी, होमवती तथा चन्द्रवती जैन आदि देवियों ने विशेष ख्याति पाई है। थोड़े समय पूर्व श्रीमती होमवती देवी की कहानियों का संग्रह 'निसर्ग' नाम से छपा है। हिन्दू पारिवारिक जीवन के सुन्दर चित्र इन देवियों की कहानियों की एक अनुपम विशेषता

है। आज हिन्दी की कहानी यथार्थवाद से अधिक प्रभावित है। भाषा की सरलता इसी प्रवाह का कारण है। अब कहानी में सामाजिक तथा अन्य प्रकार की विचार-सामग्री उपस्थित करने के साथ चरित्र-विश्लेषण की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है।

कहानी के तत्त्व

कहानी में क्योंकि वह साहित्य का एक अंग है कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, वातावरण, उद्देश्य और शैली ये ६ तत्व तो उपन्यास की तरह ही होते हैं, किन्तु रचना की भिन्नता के कारण उनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर होता है। शरीर के अंग-प्रत्यंगों की तरह ये तत्व भी एक दूसरे पर आधारीत रहते हैं।

कथावस्तु : — कहानी की कथा वस्तु अत्यधिक सीमित होती है। उसमें नगरवासी ग़रबसंरक्षक परिवार के कुटीर की भाँति संयोग में आने वाले अतिथियों के लिए स्थान नहीं। कहानीकार अपने पाठक को अन्त तक पहुँचने में इधर-उधर घूमने का एक क्षण के लिए भी अवकाश नहीं देता। जहाँ तक घटनाओं का सम्बन्ध है कहानीकार का मूल मंत्र यह कहा गया है कि वह बिना किसी विशेष प्रयोजन के अपनी कहानी के क्लेश में घटनाओं के आने की आज्ञा नहीं देता। कहानी की घटनाएँ सम्बद्ध होनी चाहिएँ और उनकी प्रगति स्वाभाविक।

कहानी का कथानुक किमी न किसी संघर्ष द्वारा उत्तरोत्तर उत्थान को प्राप्त होता हुआ, चरम या तीव्रतम स्थिति को पहुँचना है, वहाँ पर कौतूहल भी क्रमशः अपनी सर्वोच्च सीमा को पहुँच जाता है और एक चमत्कारिक ढंग से उसका अन्त हो जाता है। वहाँ आकर यह मनोदशा नहीं रहती कि देखें ऊँट किस करवट बैठता है, अपितु वहाँ पर आकर ऊँट एक निश्चित करवट में बैठ जाता है। इसके पश्चात्, आता है कहानी का परिणाम

जिसमें पूरे तथ्य का उद्घाटन हो जाता है। तृतीयतम स्थिति कथा के परिणाम को अधिक महत्वशाली बना देती है। किन्हीं कहानियों में चरम बिन्दु स्पष्ट और नुकीला होता है और किन्हीं में कुछ फैला-सा रहता है। कहानी में कई घटनायें हो सकती हैं और होती हैं, किन्तु उनमें एकता और अभिन्नता होना अपेक्षित है चरममीमा का सम्बन्ध प्रायः मूल घटना से होता है। इस प्रकार कहानी की कथावस्तु बहुत बड़ी सीमा तक कलाकार की जीवन मीमांसा और उद्देश्यों पर निर्भर रहती है।

चरित्र-चित्रण—आधुनिक युग में कथानक का उतना महत्त्व नहीं है जितना कि चरित्र-चित्रण और भावाभिव्यक्ति का। पात्रों से ही चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है। कहानी में पात्रों की संख्या बहुत थोड़ी होती है। कहानी में पात्रों के चरित्र के पूर्ण विकास के लिए अवकाश नहीं होता वरन् प्रायः वने वनाये चित्र के ऐसे अंश को आलोकित किया जाता है जिसमें पात्र का व्यक्तित्व झलक उठता है। कहानी के पात्र चाहे काल्पनिक हों चाहे वास्तविक; किन्तु वे हाड़ मांस के पुतले और व्यक्तित्वपूर्ण होने चाहिएँ। मिट्टी के माधव अथवा काठ के उल्लू जैसे पात्र जो अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रखते, वे पाठकों में रुचि उत्पन्न करने में असमर्थ रहते हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पात्र कलाकार के मानस-मन्तान अथवा उसके मस्तिष्क की उत्पत्ति होते हैं, किन्तु लेखक उनको अपने हाथ की कठपुतली नहीं बनाता। लेखक पात्र को जो व्यक्तित्व प्रदान करता है पर्याप्त कारणों के अभाव में उसे बदलता नहीं और पात्र एक बार कल्पना लोक में जन्म लेने के पश्चात् अपने व्यक्तित्व के अनुकूल ही कार्य करते देखे जाते हैं। वे कथानक की आवश्यकताओं के पूरक मात्र नहीं होते।

चरित्र-चित्रण कई प्रकार से किया जा सकता है। उसके मुख्य प्रकार दो हैं—एक तो प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक जिसमें कि कलाकार स्वयं पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालता है। और दूसरा है परोक्ष या नाट-

कीय ढङ्ग ज़िपमें चरित्र पात्रों के वार्तालाप या उनके कार्य-कलाप से अनुमेष रहता है । इसमें भी कभी-कभी कुशल कलाकार किसी पात्र द्वारा प्रत्यक्ष या गंकेतों द्वारा टीका टिप्पणी करा देता है । सांकेतिक चित्रण में गुणों की अपेक्षा उनके अभिव्यंजक कार्यों का अधिक वर्णन रहता है । प्रत्यक्ष चरित्र-चित्रण करने के लिए भी प्रायः सांकेतिक ढंग ही अधिक रुचिकर समझा जाता है । इस युग में परोक्ष चित्रण को मुख्यता प्रदान की जाती है । इसमें लेखक अपनी श्रौर में कुछ भी नहीं कहता । पात्रों का चरित्र उनके वार्तालाप द्वारा प्रकट होता है और कभी-कभी पात्र स्वयं अपने चरित्र का उद्घाटन कर देता है अथवा कोई अन्य पात्र उसके विषय में प्रत्यक्ष या सांकेतिक रूप में कुछ शब्द या वाक्य कह देता है । वार्तालाप के अतिरिक्त पात्रों का कार्य-कलाप भी उनके चरित्र-चित्रण का एक साधन होता है ।

कथनोपकथन—पात्रों के हृदयंगत भावों का जानने का साधन कथनोपकथन या वार्तालाप ही है । हम पात्रों के चरित्रों का मूल्यांकन करने में असमर्थ रहेंगे यदि वार्तालाप उनके चरित्र के अनुकूल न हो । कहानी में कथनोपकथन द्वारा तीन-तीन काम होते हैं । उसके द्वारा हमें पात्रों के चरित्र का परिचय ही प्राप्त नहीं होता, वरन् उनके सहारे कथानक भी आगे बढ़ता है । और जो कोई खिझाने और उबाने वाले प्रबन्ध-कथन के भीतर आवश्यक सजीवता, स्वाभाविकता और स्वरा उत्पन्न होती रहती है । एक कलापूर्ण कथोपकथन को संगत, सजीव, घमत्कारपूर्ण और परिस्थिति के अनुकूल होना चाहिए । हम साधारण जीवन में तो बहुत-सा निरर्थक वार्तालाप भी करते हैं, किन्तु कहानी में इसके लिए स्थान नहीं । वहाँ तो एक दो निरर्थक वार्तालाप भी रंग में भंग डाल देंगे । इस में विषय का काम करेंगे । हाँ, कथोपकथन में प्रसंगानुकूल वास्तविकता और सजीवता लाने के लिए दो-चार झंझर-उधर की भी बातें

खप सकती हैं; किन्तु एक कुशल कलाकार के हाथों में पड़कर वे भी सप्रयोजन और चरित्र की परिचायक बन जाती हैं।

वातावरण—उपन्यास में ही वातावरण के चित्रण के लिए अधिक अवकाश रहता है। फिर भी कहानी में देश-काल की स्पष्टता लाने तथा कार्य से परिस्थिति का सामंजस्य स्थापित करने के लिए इसका चित्रण आवश्यक हो जाता है। वातावरण दोनों ही प्रकार का हो सकता है, भौतिक और मानसिक; तथा भौतिक वातावरण भी प्रायः ऐसा है जो पात्रों की मानसिक दशा व्यक्त करने में सहायक हो। वातावरण के चित्रण में हिन्दी साहित्य में प्रसादजी का स्थान बहुत ऊँचा है। वीशिकजी भी वातावरण की सृष्टि करने में सिद्धहस्त हैं।

उद्देश्य—कहानी का ध्येय केवल मनोरंजन या दीर्घ रजनी को छोटा करना नहीं है, वरन् प्रत्येक कहानी में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में कोई उद्देश्य अथवा लक्ष्य अवश्य रहता है। कहानी का उद्देश्य प्रायः जीवन सम्बन्धी कुछ तत्त्व प्रदान करना अथवा मानव मन का समीचीन परिचय कराना है। आज की कहानी में उद्देश्य या तथ्य हितोपदेश या ईशप की कहानियों की तरह व्यक्त नहीं किया जाता, अपितु वह व्यंजित होता है। आज तो कहानी के अध्ययन में ही उसका उद्देश्य समझना एक आवश्यक बात होती है। कहीं यह उद्देश्य स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है; जैसे सुदर्शन की 'एलबम' शीर्षक कहानी में। उस कहानी का उद्देश्य अत्यन्त महान् है और वह है याचक की सहायता करना बिना उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाये। कहीं-कहीं उद्देश्य कुछ गूढ़-सा हो जाता है और कभी-कभी एक कुशल कलाकार अपनी कहानी के उद्देश्य को उसके अन्तिम वाक्य में सूक्ति रूप से रख देता है। उसके कथन के विशेष ढङ्ग के कारण ही उसमें काव्यत्व आ जाता है। अज्ञेयजी की शत्रु शीर्षक कहानी का अन्तिम वाक्य "जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई

यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं ।" इस कहानी का यही उद्देश्य है ।

कहानी के उद्देश्य में जीवन भीमांसा तो नहीं किन्तु प्रायः जीवन के प्रति एक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है । कुछ लेखकों को समझौता प्रिय है तो कुछ को संघर्ष । कुछ लोग संभार को जैसे का तैसा स्वीकार कर लेते हैं, तो कुछ उममे आभूल पारिवर्तन चाहते हैं । क्रान्ति द्वारा आमूल परिवर्तन की व्यंजना प्रगतिवादी कहानियों की विशेषता है । कितने ही कहानीकार उद्देश्य को महत्त्वशाली समझते हैं तो कितने ही जीवन के विश्लेषण और मन की अंतरतम गुहाओं में प्रकाश की रश्मियाँ पहुँचाने को ।

शैली—शैली ही व्यक्ति है अर्थात् लेखक के व्यक्तित्व की छाप शैली में स्पष्ट लक्षित होती है । शैली अथवा लिखने के ढङ्ग का सम्बन्ध कहानी के किसी एक तत्व विशेष से नहीं, बरन् सब तत्वों से है और उसकी अच्छाई या बुराई से सम्पूर्ण कहानी प्रभावित होती है । कला की प्रेषणीयता, अर्थात् दूसरों को प्रभावित तथा द्रवीभूत करने की शक्ति शैली पर ही आधारित रहती है । यद्यपि किसी बात के कथन या लेखन के विशेष प्रकार को शैली कहते हैं, परन्तु इसका सम्बन्ध केवल स्वप्नों से ही नहीं है बरन् विचारों और भावों से भी है । शैली के कुछ गुण विचारों से सम्बन्धित हैं तो कुछ भाषा से । सञ्ज्ञति तथा तार के क्रम आदि विचारों से सम्बन्ध रखते हैं । कलाकार किसी बात को केवल बोधगम्य कराना ही अपना उद्देश्य नहीं समझता । उच्चकोटि की शैली के लिए लक्षणा, व्यंजना आदि भाषा की सभी शक्तियों पर लेखक का अधिकार होना बांछनीय है । प्रत्येक लेखक की अपनी निजी शैली होती है, किन्तु मोटे तौर से आधुनिक कहानीकारों में दो प्रकार की शैलियाँ स्पष्ट तौर से दिखाई देती हैं—एक चलती, मुहावरेदार तथा टक्कमाली

भाषा की, जिसके प्रतिनिधि तथा नायक हैं मुंशी प्रेमचन्द्रजी; दूसरी अलंकृत तथा संस्कृत प्रधान शैली, जिसके उत्कृष्ट उदाहरण हमको 'चरणी-प्रसाद' हृदयेश तथा प्रसादजी की कहानियों में मिलते हैं।

उपर्युक्त शब्द चयन, पदमैत्री, वाक्य-विन्यास, अलङ्कार निरूपण, शृङ्खला प्रभा, चित्रोपम भाषा, कमनीय तथा कोमलकान्त पदावली, लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का सफल प्रयोग, हास्य व्यंग्य विनोद का समीचीन पुष्ट आदि शैली के प्रधान गुण हैं। इनके अतिरिक्त कहानी में शैली सम्बन्धी दो विशेष शक्तियों की आवश्यकता और होती है। एक है, वर्णन-शक्ति दूसरी है प्रकथन या प्रबन्ध-कथन शक्ति जिसके लिए अन्य शब्द विवरण शक्ति भी है। वर्णन, जड़ और चेतन का होता है और उसमें प्रकृति चित्रण भी होता है।

आधुनिक कहानी की विशेषताएँ

प्राचीन-काल में मौखिक कहानियाँ प्रायः रात्रि में ही कही जाती थी, क्योंकि दिन काम का समय समझा जाता था। और एक किवदन्ती भी थी, कि दिन में कहानी कहने से मामा दिन में गैल भूल जावेगा। उन कहानियों की भाषा सीधी सादी और आढम्बर हीन होती थी। पात्रों के व्यक्तित्व का तो पूर्ण अभाव-सा था। राजा-रानियों के नाम-ग्राम से कोई मतलब नहीं था और यदि राजाओं के नाम होते भी थे तो भोज, विक्रम उदयन आदि के जो लोच-प्रसिद्ध और सार्वजनिक आलम्बन थे। प्राचीन कहानियों में एक के बाद एक कहानी की झड़ी-सी लग जाती थी। इनमें मनुष्य और जानवर का सम भाग रहता था।

आधुनिक कहानियाँ बहुधा मानव-केन्द्रिय होती हैं और उनमें साधारण श्रेणी के लोग जिनका हमें निकटतम परिचय होता है, अधिक रहते हैं। वर्तमान कहानी में पहले की अपेक्षा कौतूहल की मात्रा अधिक हो गई है

और निश्च नूतन रूप धारण करने वाली नवीनता तथा बुद्धिवाद को अधिक स्थान मिलता जा रहा है ।

पहले कहानी का रस चमत्कार प्रदर्शन में होता था, तो आज कहानी का रस भावों के उत्थान-पतन विचारों के विश्लेषण, चरित्र-चित्रण तथा समस्याओं के उद्घाटन और उनके हल्के सुभाव में अधिक है । हृदयेश या प्रसादजी को छोड़कर आधुनिक कहानी में कादम्बरी या दशकुमार चरित्र की-सी अलंकार प्रियता भी नहीं है, किन्तु वे सादा होकर भी अपना गौरव रखती हैं । आज की कहानी की सादगी दर्द्रि की कलाहीन सादगी नहीं । अब कहानी में कथोपकथन को विवरण की अपेक्षा अधिक महत्त्व मिलता जा रहा है । बिल्कुल आधुनिकतम कहानी में घटना-चक्र का कोई महत्त्व नहीं । घटनाएँ केवल भाव और विचारों को आश्रय देने के लिये अर्गला का-सा काम देती हैं और कहीं-कहीं तो वे एक विन्दु की खूँटी मात्र-सी रह जाती हैं ।

कहानियों का वर्गीकरण

कहानी में पात्र अथवा चरित्र, वातावरण और प्रसंग तथा विविध चरित्रों और प्रसंगों के बीच में तीन मुख्य पक्ष होते हैं । जिस कहानी में पात्र अथवा चरित्र अवशेष दोनों पक्षों की अपेक्षा अधिक प्रधान होते हैं उसे चरित्र प्रधान कहानी कहते हैं, जैसे—पंच परमेश्वर, आत्माराम तथा बूढ़ी काकी आदि कहानियाँ । जिस कहानी में वातावरण और प्रसंग-चरित्र तथा चरित्रों और प्रसंगों के बीच सम्बन्ध से अधिक प्रधान होते हैं उसे वातावरण प्रधान कहानी कहते हैं, जैसे प्रसादजी की आकाश द्वीप, स्वर्ग के खंभहर में तथा हिमालय का पथिक आदि कहानियाँ । जिस कहानी में चरित्र और प्रसंगों के बीच सम्बन्ध चरित्रों तथा प्रसंगों से अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं उसे कथा-प्रधान कहानी कहते हैं । इस प्रकार की कहानियों में कोई विशेष चरित्र अनेकों प्रसंगों और वातावरणों से गुजरता है ।

उदाहरण के लिये कंशिक की कहानी 'पावन पतित' को ले सकते हैं । इनके अतिरिक्त एक प्रकार की कहानी और होती है जिसे कार्यप्रधान कहानी कहते हैं और जिनमें कार्य की प्रधानता होती है । जैसे दुर्गाप्रसाद मन्त्री की संसार विजयी तथा रूप ज्वाला कहानियाँ । जासूसी, साहसिक, रहस्यपूर्ण तथा घुमक्कड़ कहानियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं । अतः कहानी का वर्गीकरण निम्न प्रकार होगा ।

१—चरित्र प्रधान कहानी ।

२—वातावरण प्रधान कहानी ।

३—कथानक प्रधान कहानी ।

४—कार्य प्रधान कहानी ।

५—विविध कहानियाँ, जिनमें हास्य पूर्ण, ऐतिहासिक, प्राकृतवादी और प्रीकतादी कहानियों का उल्लेख अत्यन्त आवश्यक है । जैसे—प्रवाद की ममता, मुद्रशानजी की न्याय मन्त्री तथा चतुरमेन शास्त्री की मिथुराज आदि कहानियाँ हैं ।

प्रस्तुत संग्रह की विशेषताएँ

इस संग्रह में कुल १६ कहानियाँ हैं आधुनिक हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सवेप्रथम मौलिक कहानी इन्दुमती को भी इसमें स्थान मिला है कहानी-कला के विकास के भिन्न-भिन्न युगों की ये प्रतिनिधि कहानियाँ हैं । जिन कुशल कलाकारों की कहानियों को यहाँ स्थान मिला है वे आने-आने क्षेत्र में अप्रणीय हैं और उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ नहीं तो श्रेष्ठों में से एक-एक यहाँ प्रस्तुत की गई हैं ।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी उसने कहा था का प्रकाशन हिन्दी कहानी साहित्य में एक घटना है, अतः उस कहानी के संकलन करने का जोय संस्करण करना प्रायः अनुभव था । इण्टर कलाओं तक आते-

आते छात्रों का मानसिक धरातल कुछ कलापूर्ण हो जाता है और उनकी भावनाओं का परिष्कार क्रम भी प्रायः प्रारम्भ हो जाता है। यह कहानियाँ इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखते हुए संकलित की गई हैं। हमारी दृष्टि में युवकों को इनका प्रयोजन है।

इनके द्वारा वे कहानी कला का रसास्वादन ही नहीं करेंगे, अपितु अज्ञात रूप से उनकी अनेक उद्धत और उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ स्वयमेव नष्ट हो जावेंगी। इस संग्रह में आधुनिक कहानी के कलापक्ष के क्रमिक विकास का इतिहास जाना जा सके इसका विशेष ध्यान रखा गया है। साथ ही आधुनिक कहानी के विविध कला रूपों और शैलियों का भी उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। संग्रह करते समय कहानियों के वर्गीकरण का भी ध्यान रखा गया है। और प्रायः प्रत्येक वर्ग की एक कहानी यहाँ अवश्य मिलेगी। यह दूसरी बात है कि स्थानाभाव के कारण कुछ विशेष प्रकार की कहानियों को स्थान न मिल सका हो।

विषय-सूची

१—इन्दुमती या वन विहङ्गिनी	...	१
२—दुलाई वाली	...	१६
३—उसने कहा था	...	२८
४—आकाश-दीप	...	४४
५—पंच परमेश्वर	...	५८
६—विद्रोही	...	५४
७—हार की जीत	...	८०
८—उसकी माँ...	...	८७
९—तीन बच्चे	...	१०५
१०—कोटर कुटीर	...	११७
११—शरणागत	...	१२७
१२—सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया	...	१३८
१३—कला और कृत्रिमता	...	१६०
१४—अकबरी लोटा	...	१६७
१५—शत्रु	...	१७८
१६—पिंजरा	...	१८३



इन्दुमती या वनविहङ्गिनी

[श्री किशोरीलाल गोस्वामी]

प्रथम परिच्छेद

इन्दुमती अपने बूढ़े पिता के साथ विंध्याचल के घने जंगल में रहती थी। जब से उसके पिता वहाँ पर कुटी बनाकर रहने लगे थे, तब से वह बराबर उन्हीं के साथ रही, न कभी जंगल के बाहर निकली और न किसी दूसरे का मुँह देख सकी। जब उसकी अवस्था चार वर्ष की थी, तभी उसकी माता का परलोक-वास हुआ था और उसके पिता उसे लेकर वनवासो हुए थे। फिर जब से वह समझने योग्य हुई, तब से नाना प्रकार के बनैले पशु, पक्षियों, वृक्षावलियों और गंगा की धारा के अतिरिक्त यह नहीं जानती थी कि,—संसार या संसारी सुख क्या है और इसमें कैसे-कैसे विचित्र पदार्थ भरे पड़े हैं ! फूलों को बिन बिनकर माला बनाना, हरिणों के संग कलोल करना, दिन भर वन वन में घूमना और पक्षियों का गाना सुनना; बस यही उसका काम था। वह यह भी नहीं जानती थी कि,—मेरे बूढ़े पिता के अतिरिक्त और भी कोई मनुष्य संसार में है।

एक दिन वह नदी में अपनी परछाईं देखकर बड़ी मोहित हुई, पर जब उसने यह जाना कि यह मेरी ही परछाईं है तब वह बहुत ही लज्जित हुई; यहाँ तक कि उस दिन से फिर कभी उसने नदी में अपना मुख नहीं निहारा।

गर्मी की ऋतु थी और दोपहर का समय था; जबकि उसके पिता अपनी कुटी में बैठे हुए “गीता” की पुस्तक देख रहे थे।

उस समय वह नदी किनारे पेड़ों की ठंडी छाया में घूमती फिरती फूलों को तोड़ तोड़ नदी में बहाती हुई कुछ दूर निकल गई थी कि एकाएक चौंकर खड़ी हो गई। उसने एक ऐसी वस्तु देखी कि जिसका उसे स्वप्न में भी ध्यान न था और जिसके देखने से उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। इसने क्या देखा कि एक बहुत ही सुन्दर, बीस, बाईस वर्ष का नवयुवक नदी किनारे, पेड़ की छाया में, घास पर पड़ा सो रहा है !

इन्दुमती ने आज तक अपने बूढ़े पिता को छोड़ और किसी दूसरे मनुष्य की सूरत नहीं देखी थी। वह अभी तक यही सोचे हुए थी कि यदि संसार में और भी मनुष्य होंगे; और उनकी डाढ़ी मूँछें पकी हुई होंगी ! उसने जब अच्छी तरह आँखें फाड़ फाड़कर उस परम सुन्दर युवक को देखा तो अपने मन में निश्चय किया कि,—मनुष्य तो ऐसा होता नहीं, इसलिए हो न हो यह कोई देवता होंगे ! क्योंकि मेरे पिता जब देवताओं की कहानी मुझे सुनाते हैं, तो उन देवताओं के ऐसे ही रूप-रंग बतलाते हैं। यह सोचकर वह मन में कुछ डरी और कुछ दूर हट, पेड़ की ओट में खड़ी हो और टकटकी बाँधकर उस युवक को देखने लगी; और मारे डर के युवक के पास तक न गई, तथा उसकी सुन्दरता से मोहित हो, कुटी की ओर भी अपना पैर न बढ़ा सकी। यों ही घण्टों बीत गये, पर इन्दुमती को यह न जान पड़ा कि मैं कितनी देर से खड़ी खड़ी इसे निहार रही हूँ !

निदान बहुत देर पीछे वह अपना जी कड़ा करके वृक्ष की ओट से निकलकर युवक के आगे बढ़ी। वह दो ही चार पग चली होगी कि एकाएक उस युवक की नींद खुल गई और उसने अपने सामने एक परम सुन्दरी देवी-मूर्ति को देखा; जिसके देखने से उसके आश्चर्य की सीमा न रही। वह मन ही मन सोचने

लगा कि इस भयानक और घनघोर जंगल में ऐसी मनमोहनी परम सुन्दरी स्त्री कहाँ से आई !

युवक ने मन ही मन कहा कि, ऐसा रूप-रंग तो बड़े-बड़े राजाओं के निवास में भी दुर्लभ है, सो इस वन में कहाँ से आया ! सो या तो मैं स्वप्न में स्वर्ग की सैर करता होऊँगा, या किसी देवकन्या, या वनदेवी ने मुझे छलने के लिये दर्शन दिया होगा !

यही सब सोच-विचार करता हुआ वह भी पड़ा पड़ा इन्दु-मती की ओर निहारने लगा । दोनों की रह रहकर आँखें चार हो जातीं, जिनसे अचरज के अतिरिक्त और कोई भाव नहीं झलकता था । यों ही परस्पर देखा-भाली होते होते एकाएक इन्दुमती के मन में किसी अपूर्व भाव का उदय हो आया, जिस से वह इतनी लज्जित हुई कि उसकी आँखें नीची हो गईं और मुख लाल हो गया । वह भागना चाहती थी कि चट युवक उठ कर सामने खड़ा हो गया और कहने लगा, हे सुन्दरी ! तुम देवकन्या हो, या वनदेवी हो अथवा चाहे कोई हो, पर कृपा करके यदि तुमने दर्शन दिया है तो जरा सी दया और करो; तनिक ठहरो और मरी बातें सुनो; घबराओ मत । यदि तुम मनुष्य की लड़की हो तो डरो मत, क्योंकि क्षत्री लोग स्त्रियों को रक्षा करने के सिवाय उनके साथ कभी बुराई नहीं करते । सुनो, यदि तुम सचमुच वनदेवी हो तो कृपा कर मुझे इस वन से निकलने का सीधा मार्ग बता दो । क्योंकि मैं विपत्ति का मारा, तीन दिन से इस वन में भटक रहा हूँ, पर इसमें से निकलने का मार्ग नहीं पाता । और जो तुम में ही भाँति मनुष्य जाति की कन्या होओ तो मैं तुम्हारा 'अथिति' हूँ, मुझे केवल आज भर के लिए टिकने की जगह दो । बस, इसके अतिरिक्त और अधिक मैं तुमसे कुछ नहीं चाहता !'

युवक की बातें सुनकर इन्दुमती ने मन में विचारा कि तो क्या ये देवता नहीं है और हमी लोगों की भाँति मनुष्य है ! ऐसा हो सकता है, क्योंकि जो ये देवता होते तो ऐसी मीठी मीठी बातें बनाकर आप ही मेरे अतिथि क्यों बनते, इसलिए कि देवताओं को कमी किस बात की है ! और वे क्या नहीं जानते, जो हमसे वन का मार्ग पृच्छते। तो यह मनुष्य ही होंगे, पर क्या मनुष्य इतने सुन्दर होते और ऐसी मीठी बातें करते हैं ! अहा ! एक दिन मैं जल में अपनी सुन्दरता देखकर ऐसी मोहित हुई थी कि क्या कहूँ ! किन्तु इनकी सुन्दरता के आगे तो मेरा रूप-रंग निरा पानी है। इस तरह सोचते-विचारते उसने अपना सिर ऊँचा किया और देखा कि युवक अपनी बात का उत्तर पाने के लिये सामने एकटक लगाये खड़ा है। यह देखकर वह बहुत ही अधीनताई और मधुर स्वर से बोली कि, “मैं अपने बूढ़े पिता के साथ इसी घने जंगल के भीतर एक छोटी सी कुटी में, जो एक सुहावनी पहाड़ी की चोटी पर बनी हुई है, रहती हूँ। अतएव यदि तुम मेरे अतिथि हुआ चाहते हो तो मेरी कुटी पर चलो। वहाँ चलकर जो कुछ मुझसे बनेगा, कन्दमूल, फल-फूल और जल से तुम्हारी सेवा करूँगी और मेरे पिता भी तुम्हें देखकर बहुत प्रसन्न होंगे।” इतना कह कर वह युवक को अपने साथ ले पहाड़ी पगडण्डी से होती हुई अपनी कुटी की ओर बढ़ी।

दूसरा परिच्छेद

उसने जो युवा से यह कहा था कि मेरे पिता भी तुम्हें देख कर बहुत प्रसन्न होंगे; सो केवल अपने स्वभाव के अनुसार ही कहा था, क्योंकि वह यही जानती थी कि ऐसी सुन्दर मूर्ति को देखकर मेरे पिता भी मेरी ही भाँति आनन्दित होंगे। परन्तु

कुटी के पास पहुँचते ही उसका सब सोचा-विचारा हवा हो गया। उसके सुख का सपना जाता रहा और वह जिस बात को ध्यान में भी नहीं ला सकती थी, वही उसके आगे आई ! अर्थात् वह बूढ़ा अपनी लड़की को पराये पुरुष के साथ आती हुई देख कर मारे क्रोध के अग्न हो गया, और अपनी कुटी से निकल युवक के आगे खड़ा हो, यों कहने लगा, “अरे दुष्ट ! तू कौन है ? क्या तुझे अपने प्राण का मोह नहीं है, जो तू बेधड़क मेरी कन्या से बोला और मेरी कुटी पर चला आया ? तू जानता नहीं कि जो मनुष्य मेरी आज्ञा के बिना इस वन में पैर रखता है, तुरन्त उसका सिर काटा जाता है ? अच्छा ठहर, अब तुझे भी नियमानुसार प्राणदण्ड दिया जायगा ।”

इतना कह वह क्रोध से युवक की ओर घूरने लगा। उस समय बेचारी इन्दुमती की विचित्र दशा थी। उसने आज तक अपने पिता की ऐसी भयानक मूर्ति नहीं देखी थी। सो वह अपने पिता का ऐसा अनूठा क्रोध देख, पहले तो बहुत डरी, फिर अपने ही लिये एक युवा बटोही बेचारे का प्राण जाते देख जी कड़ाकर बूढ़े के पैरों पर गिर पड़ी और रो-रो तथा गिड़गिड़ा गिड़गिड़ा कर युवक के प्राण की भिक्षा माँगने लगी। उस समय उसने अपने पिता को यह अच्छी तरह समझा दिया कि इसमें इस युवक का कोई दोष नहीं है, इसे मैं ही कुटी पर ले आई हूँ। यदि इसमें कोई अपसंध हुआ हो तो उसका दण्ड मुझे मिलना चाहिए, न कि इस युवक को।

कन्या की ऐसी अनोखी विनती सुनकर वह बुढ़ा कुछ ठंडा हुआ और युवा की ओर देखकर बोला कि, “सुनो जी ! इस अज्ञान लड़की की विनती से मैंने तुम्हारा प्राण छोड़ दिया, परन्तु तुम अब यहाँ से जाने न पाओगे, कैदी की तरह जन्म

भर तुम्हें यहाँ रहकर हमारी गुलामी करनी पड़ेगी, और जो तुम भागने का मन्सूबा बांधोगे तो तुरन्त मारे जाओगे ।” इतना कह कर जोर से बुड्ढे ने सीटी बजाई, जिसकी आवाज दूर दूर तक वन में गूँजने लगी और देखते देखते बीस-पच्चीस आदमी हट्टे-कट्टे यमदूत की सूरत, हाथ में ढाल, तलवार लिये बुड्ढे के सामने आ खड़े हुए ! उन्हें देखकर उस बुड्ढे ने कहा, “सुनो वीरो, इस युवक को (अँगुली से दिखाकर) आज से मैंने अपना बँधुआ बनाया है, अतएव तुम लोग इस पर ताक लगाये रहना, जिसमें यह भागने न पावे । और अब तुम लोग इसकी तलवार ले लो और बस यहाँ से जाओ ।”

इतना सुनते ही वे सब के सब युवक से तलवार छीन और सिर झुकाकर चले गये, पर इस नए तमाशे को देख इन्दुमती के होशहवास उड़ गये । क्योंकि जब से उसने होश मम्हाला था, तब से आज तक अपने बुड्ढे बाप को छोड़ और किसी दूसरे मनुष्य की सूरत तक उसने नहीं देखी थी; पर आज एका-एक इतने आदमियों को अपने पिता के पास देखकर वह बहुत ही चकपकाई, पर डर के मारे कुछ बोली नहीं । बुड्ढे ने युवक की ओर आँखें उठाकर कहा कि, “देखो, अब तुम मेरे बँधुए हुए; इसलिये अब से जो जो मैं कहूँगा; सो तुम्हें करना पड़ेगा । उनमें आज पहिला काम तुम्हें यह दिया जाता है कि तुम इस सूखे पेड़ को (दिखलाकर) काट काटकर लकड़ी को कुटी के भीतर रक्खो । ध्यान रक्खो, यदि तुमने ज़रा भी मेरी आज्ञा टाली तो फिर समझ लेना कि तुम्हारे धड़ पर विधाता ने सिर बनाया ही नहीं । और अरी इन्दुमती, तू भी कान खोलकर सुन ले । यदि अब से फिर कभी तू इस युवक के साथ किसी तरह की भी बातचीत करेगी तो तेरी भी वही दशा की जायगी, जिसकी ओर इस युवक से इङ्गित किया गया है ।”

इतना कहकर वह बुड्ढा कुटी के भीतर चला गया और फिर उसी "गीता" की पुस्तक को लेकर पढ़ने लगा।

उस बुड्ढे का विचित्र रंग-ढंग देखकर हमारे युवक के हृदय में उस समय कैसे कैसे भावों की तरंगें उठी होंगी, हम उसके लिखने में असमर्थ हैं। पर हाँ, इतना तो उसने मन ही मन अवश्य निश्चय किया था कि यदि सचमुच यह सुन्दरी इसी बुड्ढे की लड़की है तो विलक्षण विधाता ने मानो पत्थर से नवनीत पैदा किया है !

तीसरा परिच्छेद

निदान, बेचारा युवक अपने भाग्य पर भरोसा रख कुल्हाड़ा हाथ में लेकर पेड़ काटने लगा और इन्दुमती उसके पास ही खड़ी खड़ी टकटकी लगाये उसे देखने लगी। दो ही चार बार के टाँगा चलाने से उस युवक के अंग अंग से पसीने की बूँदें टपकने लगीं और वह इतने जोर जोर से साँस लेने लगा जिससे यह जान पड़ता था कि यदि यों ही घंटे दो घंटे यह टाँगा चलावेगा तो अवश्य ही अपनी जान से हाथ धो बैठेगा। उसकी ऐसी दृशा देख, इन्दुमती ने उसके लिए फल और जल लाकर तथा आँखों में आँसू भरकर कहा, "सुनो जी, जरा ठहर जाओ, देखो, यह फल और जल मैं लाई हूँ सो इसे खा लो और जरा ठंडे हो लो, तो फिर पेड़ काटना; छोड़ो हटो, मान जाओ।"

युवक ने उस कुमारी की प्रेम भरी बातों को सुनकर कहा—
"सुन्दरी, मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारा मुँह देखने से मुझे इस परिश्रम का कष्ट जरा भी नहीं व्यापता। यदि तुम यों ही मेरे सामने खड़ी रहो, तो मैं बिना अन्न जल किये ही सारे संसार के पेड़ काटकर रख दूंगा। और सुनो तो सही, तुम अपने क्रोधी

पिता की बातें तो याद करो। वरन क्यों नाहक तुम मेरे लिये अपने प्राणों को संकट में डालती हो ! क्योंकि यदि वे हमारी तुम्हारी बातें सुन लेंगे तो क्या होगा ! और जो मैं सुस्ताने लगूँगी तो लकड़ी कौन काटेगा ? क्योंकि जब वे देखेंगे कि पेड़ नहीं कटा, तो कैसा उपद्रव करेंगे ! इसलिये हे सुशीले ! तुम मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दो और जलपान करने का नाम भी न लो।

युवक की ऐसी करुणा भरी बातें सुनकर इन्दुमती की आँखों में आँसू बहने लगे। उसने बरजोरी युवक के हाथ से कुठार ले लिया और कहा “चाहे कुछ भी हो, पर तुम जरा तो ठहर जाओ और मेरे कहने से मेरे लाये हुए फल खाकर जरा दम ले लो। तब तक तुम्हारे बदले मैं लकड़ी काटती हूँ।”

इस पर युवक ने बहुत समझाया, पर वह न मानी और अपने सुकुमार हाथों से कुठार उठाकर पेड़ पर मारने लगी। तब युवक ने जल्दी-जल्दी उसके बहुत कहने से कई एक फल खाकर दो घूँट जल पिया। इतने ही में हाथ में नंगी तलवार लिये द्रुये वह बुड्ढा कुटी से निकल कड़ककर युवक से बोला—

“क्यों रे नीच ! तेरी इतनी बड़ी सामर्थ्य कि आप तो बैठा-बैठा सुस्ता रहा है और मेरी लड़की के पेड़ कटवाता है। रह दुष्ट, मैं अभी तेरा सिर काटता हूँ।” फिर इन्दुमती की ओर घूमकर बोला—“क्यों री ढीठ ! तैने मेरे मना करने पर भी इस दुष्ट से बातचीत की ! रह जा, मैं तेरा भी वध करता हूँ।”

बुड्ढे की बातें सुनकर युवक उसके पैरों पर गिर पड़ा और कहने लगा, “महाशय इस बेचारी का कोई अपराध नहीं है, इसलिए आप इसे छोड़ दीजिए और जो कुछ दंड देना हो वह मुझे दीजिए।”

उन दोनों की ऐसी बातें सुनकर बुड्ढे ने कहा,—“अच्छा, आज तो मैं तुम दोनों को छोड़े देता हूँ। पर देखो, फिर यदि मेरी बातों का ध्यान न रखोगे तो तुम दोनों मारे जाओगे।”

इतना कहकर बुड्ढा कुटी में चला गया और वे दोनों एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इन्दुमती बोली कि,—“घबराओ मत, मेरे रहते तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।” और युवक ने कहा, “तुम क्यों व्यर्थ मेरे लिए कष्ट सहती हो। इसलिये जाओ, तुम कुटी में जाओ।” पर इन्दुमती उसके मुँह की ओर उदासी से देखने लगी और वह कुठार उठाकर पेड़ काटने लगा।

इतने ही में फिर बाहर निकलकर बुड्ढा बोला,—“ओ छोकरे ! संध्या हुई, अब रहने दे; पर देख, कल दिन भर में जो तूने साखी पेड़ न काट डाला तो देखियो कि मैं क्या करता हूँ। और सुनती है री इन्दुमती ! तू इसे कुटी में ले जाकर सड़े गले फल खाने को और गँदला पानी पीने को दे। परन्तु सावधान ! तेरे मुख से एक अक्षर भी न निकलने पावे। और सुन बे लड़के ! खबरदार, जो तू ने इससे कुछ बातचीत की तो मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा।” यह कह कर बूढ़ा पहाड़ी पगडंडी से गर्गातट की ओर उतरने लगा और उसके जाने पर इन्दुमती मुस्कुराकर युवा का हाथ थाम्हेँ हुई कुटी के भीतर गई और वहाँ जाकर उसने पिता की आज्ञा मेटकर सड़े गले फल और गँदले पानी के बदले अच्छे अच्छे मोठे फल और सुन्दर साफ पानी युवक को दिया। और युवक के बहुत आग्रह करने पर दोनों ने साथ बैठकर एक ही पत्तल पर फलाहार किया। फिर वे दोनों पुड्ढे के आने में देर समझ, बाहर चाँदनी में एक साथ ही चट्टान पर बैठ कर बातें करने लगे।

चौथा परिच्छेद

आधी रात जा चुकी थी और वन में चारों ओर भयानक बनैले जन्तुओं के गरजने की ध्वनि फैल रही थी। उस समय चार आदमी हाथ में तलवार और बरछा लिये हुये उस कुटी के चारों ओर पहरा दे रहे थे। कुटी से थोड़ी ही दूर पर एक ढालुआँ चोटी पर दस-बारह आदमी बैठे बातें कर रहे थे। चलिये पाठक ! देखिये, ये लोग क्यों-क्या बातें करते हैं। अहा ! यह देखिये ! इन्दुमती का पिता एक चटाई पर बैठा है और उसके सामने दस-बारह आदमी हाथ बाँधे हुए जमीन में बैठे हैं। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहा, फिर बूढ़े ने कहा—

“सुनो भाइयो ! इतने दिनों पीछे परमेश्वर ने हमारा मनोरथ पूरा किया। जो बात पहले एक प्रकार से अनहोनी जान पड़ती थी, सो नारायण की दया से आज आपसे आप ही हो गई। यह परमेश्वर ने अच्छा किया, नहीं तो बेचारी इन्दुमती का बेड़ा पार कैसे लगता ! देखो, भाइयो ! जिस युवक की रखवाली के लिये कल तीसरे पहर मैंने तुम लोगों से कहा था, वह अजयगढ़ का राजकुमार, या यों कहो कि अब राजा है। इसका नाम चन्द्रशेखर है। इसके पिता राजशेखर को उसी बेईमान काफिर इब्राहीम लोदी ने दिल्ली में बुलाकर विश्वासघात करके मार डाला था; तब से यह लड़का इब्राहीम के घात में लगा था। अभी थोड़े दिन हुये, जो बाबर से इब्राहीम की लड़ाई हुई है उसमें इसी चन्द्रशेखर ने भेष बदल और इब्राहीम की सेना में घुस कर उसे मार डाला है। यह बात कहीं इब्राहीम के एक सेनापति ने देखली और उसने चन्द्रशेखर का पीछा किया। निदान, यह बेचारा भागा और कई दिनों पीछे इसने उस सेनापति को द्वन्द्व युद्ध में मार और अपने घोड़े को गँवा,

राह भूलकर अपने राज्य की ओर न जाकर इस ओर आ पड़ा और कल मेरी कन्या का अतिथि बना। आज उसने यह सब कोरा जलपान करते-करते इन्दुमती से कहा, जिसे मैंने आड़ में खड़े होकर सुना है। मैंने यह भली भाँति जान लिया है कि वे दोनों एक दूसरे को जी जान से चाहने लगे हैं। इसलिये इस बात के अतिरिक्त और क्या कहा जाय कि परमेश्वर ही ने इन्दुमती का जोड़ा भेज दिया है और साथ ही उस दयामय ने मेरी भी प्रतिज्ञा पूरी की।”

इतना सुनकर सभी ने जयध्वनि के साथ हर्ष प्रकट किया, और बृद्धा फिर कहने लगा—“मेरी इन्दुमती अब सोलह वर्ष की हुई, अब उसे कुँवारी रखना किसो तरह उचित नहीं है, और ऐसी अवस्था में, जब कि मेरी प्रतिज्ञा भी पूरी हुई और इन्दुमती के योग्य सुपात्र वर भी मिला जिसे इन्दुमती ने भी पसन्द किया है।”

“भाइयो ! देखो, स्त्री के लिये इससे बढ़कर और कौन बात सुख देनेवाली है ? मैंने जो पहले चन्द्रशेखर को देख इतना क्रोध प्रकट किया था, उसका आशय केवल यही था कि यदि उन दोनों में सच्चा प्रीति का अंकुर जमेगा तो दोनों का व्याह कर दूँगा, और जो ऐसा न हुआ तो युवक आप डर के मारे भाग जायगा। परन्तु यहाँ तो परमेश्वर को इन्दुमती का भाग्य खोलना था, और ऐसा ही हुआ भी। वस, अब कल ही मैं दोनों का व्याह करके हिमालय चला जाऊँगा और तुम लोग वर-कन्या को उनके घर तक पहुँचाकर अपने अपने घर जाना। बारह वर्ष तक जो तुम लोगों ने तन, मन और धन से मेरी सेवकाई की है, इसका ऋण सदा मेरे सिर पर रहेगा और जगदीश्वर इसके बदले में तुम लोगों के साथ भलाई करेगा।”

पाँचवाँ परिच्छेद

अहा ! प्रेम ! तू धन्य है ! जिस इन्दुमती ने आज तक देवता की भाँति अपने पिता की सेवा की, और भूलकर भी कभी उसकी आज्ञा न टाली, आज वही प्रेम के फन्दे में फँसकर अपने प्यारे पिता की आज्ञा का उलटा बर्ताव करती है ! वृद्ध ने लौट कर क्या देखा कि दोनों कुटी के पिछवाड़े चाँदनी में बैठे हुये आपस में बातें कर रहे हैं। यह देखकर वह मन ही मन प्रसन्न हुआ और कुटी में आकर सोरहा। पर हमारे नये दोनों प्रेमियों ने बातों ही बातों वह रात बिता दी। सबेरा होते ही युवक कुठार ले लकड़ी काटने लगा, और इन्दुमती सारा काम छोड़कर खड़ी खड़ी उसके मुख की ओर देखने लगी। थोड़ी ही देर में युवक के सारे शरीर से पसीने की वूँदें टपकने लगीं और घाम की ताप से चेहरा लाल हो आया। इतने ही में वृद्ध ने आकर गरज कर कहा, ओ लड़के ! बस, पेड़ पीछे काटियो, पहिले जो लकड़ियाँ कटी हैं, उन्हें उठाकर कुटी के पिछवाड़े ढेर लगादे। इतना कहकर चुड़ड़ा चला गया और युवक लकड़ी उठा उठाकर कुटी के पिछवाड़े ढेर लगाने लगा। उसका इतना परिश्रम इन्दुमती से देखा न गया और बड़े प्रेम से वह उसका हाथ थामकर बोली—“ठहरो, बस करो; अब बाकी लकड़ियाँ मैं रख आती हूँ ! हाय, तुम्हारा परिश्रम देखकर मेरी छाती फटी जाती है, तुम राजकुमार होकर आज लकड़ी ढोते हो ! ठहरो, जरा तुम सुस्ता लो ।”

युवक ने मुस्कराकर कहा—“सावधान, तुम ऐसा काम भूलकर भी न करना। तुम अपने पिता का क्रोध याद करो। यदि अब की बार उन्होंने तुम्हें लकड़ी उठाते या हमसे बोलते देख लिया तो सर्वनाश हो जायगा।

इतना सुनकर इन्दुमती की आँखों में आँसू भर आए और वह बोली—“मेरे पिता का तो बहुत अच्छा स्वभाव था, परन्तु तुम्हें देखते ही एकदम से ऐसा बदल क्यों गया ? वह तो ऐसे नहीं थे, पर हाय ! अब उन्हें क्या हो गया ! आज तक मैंने उन्हें कभी क्रोध करते नहीं देखा था । खैर जो कुछ हो, पर तुम जरा ठहरो, और दम ले लो; तब तक मैं इन लकड़ियों को फेंक देती हूँ ।”

युवक ने कहा—“मैं क्या रात्तस हूँ कि अपनी आँखों के सामने तुम्हें लकड़ी ढोने दूँगा ! हटो, ऐसा नहीं होगा । तुम सच जानो कि तुम्हें देखने से मुझे कुछ भी कष्ट नहीं जान पड़ता ।” इस पर इन्दुमती ने उदास होकर कहा—“हाय, तुम्हारा मुख देखकर मेरे हृदय में ऐसी वेदना होती है कि क्या कहूँ ! हाय, जो तुम मेरे हृदय का हाल जानते तो ऐसा कमी न कहते ।”

इधर तो उन दोनों नये प्रेमियों में ये बातें हो रही थीं और उधर पीछे लता-मंडप की ओट में खड़े खड़े वृद्ध ने दोनों को बातें सुनकर मन ही मन बड़ा सुख माना । पर उन दोनों के प्रेम की अन्तिम परीक्षा करने के अभिप्राय से हाथ में नंगी तलवार ले और मामने आ, गरजकर कह,—“इन्दुमती ! कल से आज तक तैंने मेरी सब बातों का उलटा ही बर्ताव किया । कल जो तू ने इसके साथ बैठकर फलाहार किया था और रात को इसके साथ चाँदनी में घूमी थी, उसकी बात यादकर, और तू फिर इससे बातें करती है ! देख, अब मैं तेरा सिर काटता हूँ ।” यह कहकर ज्योंही वह इन्दुमती की ओर बढ़ा कि चट वह युवक उसके पाँवों पर गिरकर कहने लगा—“महाशय, आप अपने क्रोध को दूर करने के लिये मुझे मारिये, क्योंकि सब दोष मेरा है और मैं ही दण्ड के योग्य हूँ । आप निश्चय जानिये कि यह बालिका सब तरह निरपराधिनी है । लीजिए, मेरा सिर आपके

पैरों पर है। इसे काट लीजिए; पर मेरे सामने एक निरपराध लड़की का प्राण न लीजिये।” यह सुन, वृद्ध ज्योंही अपनी तलवार युवक की गर्दन पर रखना चाहता था कि इन्दुमती पागल की तरह उस बुढ़े के चरणों पर गिर, बिलख बिलखकर रोने और कहने लगी,—“पिता, पिता, जो आपको मारना ही है तो पहिले मेरा सिर काट लीजिए, पीछे फिर आपके जो जी में आवे सो करियेगा।”

इतना सुनकर बुढ़े ने अपने हाथ की तलवार दूर फेंक दी और दोनों को उठा गले लगाकर कहा,—“बेटी इन्दुमती ! तू धीरज धर; और प्रिय वत्स चन्द्रशेखर ! तुम भी अपने चित्त से सब खेद दूर करो। क्योंकि मैंने केवल तुम दोनों के प्रेम की परीक्षा लेने के लिए ही इस प्रकार क्रोध का भाव दिखलाया था। यदि तुम दोनों का सच्चा प्रेम न होता तो तुम दोनों क्यों एक दूसरे के लिए जान पर खेलकर क्षमा चाहते ! और सुनो चन्द्रशेखर ! मैंने छिपकर तुम्हारी सब बातें सुनी हैं। अतएव अब तुमसे बढ़कर संसार में दूसरा कौन राजकुमार है, जो इन्दुमती का वर बनने योग्य होगा ! सुनो युवराज ! देवगढ़ मेरे ही पुरुषाओं की राजधानी थी। जबकि इन्दुमतो केवल चार ही वर्ष की थी, इब्राहीम ने मेरे नगर को घेरकर मुझसे यह कहलाया कि, या तो अपनी स्त्री (इन्दुमती की माँ) को मेरे पास भेज दो, या जंग करो। यह सुनकर मेरी आँखों में खून उतर आया और उसके दूत को मैंने निकलवा दिया। फिर क्या पूछना था ! देखते देखते सारा नगर हत्यारों के भीषण अत्याचार से श्मशान हो गया, मेरी स्त्री ने आत्म-हत्या की, और मैं उससे बदला लेने की इच्छा मन में रख और चार वर्ष की इस अवोध लड़की को ले, इस जंगल में आकर रहने लगा। मेरे कृतज्ञ सरदारों में से पचास आदिमियों ने अपना सर्वस्व त्यागकर मेरा

साथ दिया और आज तक वह सब मेरे साथ हैं। वन्हीं लोगों में से कई आदमियों को तुमने कल देखा था ! वत्स चन्द्रशेखर ! देवगढ़ से भागकर और इस जंगल में आकर रहते, आज मुझे बारह वर्ष हो गये, पर ऐसी सावधानी से मैंने इस लड़की का लालन-पालन किया और इसे पढ़ाया-लिखाया कि जिसका सुख तुम्हें आगे चलकर आपही इसकी सुशीलता से जान पड़ेगा। और देखो, मैंने इसे ऐसे पहरों में रक्खा कि कल के सिवा कभी इसने मुझे छोड़ किसी दूसरे मनुष्य की सूरत तक न देखी। मैंने राजस्थान के सभी राजाओं से सहायता माँगी और उनसे यह कहलाया कि जो कोई उस इब्राहीम का सिर काट लावेगा, उसे मैं अपनी लड़की ब्याह दूँगा। पर हा ! किसी क्षत्रिय वीर ने मेरी बात न सुनी और सभी मुझे पागल समझ कर हँसने लगे। अन्त में मैंने दुःखी होकर यह प्रतिज्ञा की कि, जो कोई इब्राहीम को मारेगा, उसी के साथ मेरी इन्दुमती ब्याही जायगी। किन्तु यदि ऐसा न हुआ तो यह जन्म भर कुँवारी ही रहेगी। सो परमेश्वर ने तुम्हारे हृदय में बैठकर मेरी प्रतिज्ञा पूरी की। अतएव अब यह इन्दुमती तुम्हारी ही हुई और आज मैं बड़े भारी बोझ को उतार कर आजन्म के लिये हलका हो गया।”

इतना कहकर उस बुड्ढे ने सीटी बजाई और देखते देखते पचास जवान हथियारों से सजे घोड़ों पर सवार आ खड़े हुए। उनके साथ सजे हुए घोड़े चन्द्रशेखर और इन्दुमती के लिए थे। उसी समय बुड्ढे ने उन दोनों का विवाह करके उन वीरों के साथ विदा किया और आप हिमालय की ओर चला गया।

अहा ! जो इन्दुमती इतने दिनों तक ‘वन्विहंगनी’ थी, वह आज अन्तःपुर के पिजरे में बन्द होने के लिए चली। सच है, परमेश्वर की महिमा का कौन पार पा सकता है।

दुलाईवाली

[एक वङ्ग महिला]

काशी जी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके एक मनुष्य बड़ी व्यग्रता के साथ गोदौलिया की तरफ आ रहा था। एक हाथ में एक मैली-सी तौलिया में लपेटी हुई भीगी धोती और दूसरे में सुरती की गोलियों की कई डिबियाँ और सुँघनी की एक पुड़िया थी। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। गोदौलिया की बाईं ओर जो गली है, उसके भीतर एक और गली में थोड़ी दूर पर एक टूटे से पुराने मकान में वह जा घुसा। मकान के पहले खंड में बहुत अँधेरा था; पर ऊपर की जगह मनुष्य के वासोपयोगी थी। नवागत धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक कोठरी में उसने हाथ की चीजें रख दीं और “सीता ! सीता !” कहकर पुकारने लगा। “क्या है ?” कहती हुई एक दस वर्ष की बालिका आ खड़ी हुई। तब उस पुरुष ने कहा,— “सीता ! जरा अपनी बहन को बुला ला।” “अच्छा” कह कर सीता गई, और कुछ देर में एक नवीना स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसे देखते ही पुरुष ने कहा—“तो हम लोगों को तो आज ही जाना होगा।” इस बात को सुनकर स्त्री कुछ आश्चर्ययुक्त होकर और झुँझलाकर बोली—

“आज ही जाना होगा ! यह क्यों ? भला आज कैसे जाना हो सकेगा ? ऐसा ही था तो सवेरे भैया से कह देते। तुम तो

जानते हो कि मुँह से कह दिया; बस छुट्टी हुई। लड़की कभी बिदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत में जाना नहीं हो सकता।”

“तुम आज कहती हो ! हमें तो अभी जाना है। बात यह है कि आज नवलकिशोर कलकत्ते से आ रहे हैं। आरे से अपनी नई बहू को भी साथ ला रहे हैं। सो उन्होंने हमें आज ही जाने के लिए इसरार किया है। हम सब लोग मुगलसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे। उनका तार मुझे घर से निकलते ही मिला। इसी से मैं भट नहा-धोकर लौट आया। बस, अब करना तो क्या है ? कपड़ा-वपड़ा जो कुछ हो बाँध-बूँधकर, घण्टे भर में खा-पीकर, चली चलो। जब हम तुम्हें बिदा कराने आये ही हैं, तब कल के बदले आज ही सही।”

“हाँ, यह बात है ! नवल जो चाहें करावें। क्या एक ही गाड़ी में न जाने से दोस्ती में बट्टा लग जायगा ? अब तो किसी तरह रुकोगे नहीं, जरूर ही उनके साथ जाओगे। पर मेरे तो नाकों दम आ जायगी।”

“क्यों ? किस बात से ?”

“उनकी हँसी से और किससे ! हँसी ठट्ठा भी राह से अच्छी लगती है। उनकी हँसी मुझे नहीं भाती। एक रोज मैं चौके में बैठी पूड़ियाँ काढ़ रही थी, कि इतने में न जाने कहाँ से आकर नवल चिल्लाने लगे—“ए बुआ ! ए बुआ ! देखो तुम्हारी बहू पूड़ियाँ खा रही है।” मैं तो मारे शरम के मर-सी गई। हाँ, भाभी जी ने बात उड़ा दी सही। वे बोलीं,—“खाने दो, खाने-पहनने के लिए आई ही है। पर मुझे उनकी हँसी बहुत बुरी लगी।”

“बस, इसी से तुम उनके साथ नहीं जाना चाहती ? अच्छा

चलो मैं नवल से कह दूँगा कि यह बेचारी कभी रोटी तक तो खाती ही नहीं, पूरी क्यों खाने लगी !”

इतना कहकर वंशीधर कोठरी के बाहर चले आये और बोले—“मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो रुलाकर तैयार हो जाना।”

इतना सुनते ही जानकीदेई की आँखें भर आईं। और असाढ़-सावन की ऐसी झड़ी लग गई।

(२)

वंशीधर इलाहाबाद के रहनेवाले हैं। बनारस में ससुराल है। स्त्री को बिदा कराने आये हैं। ससुराल में एक साले, साली और सास के सिवा और कोई नहीं है। नवलकिशोर इनके दूर के नाते में ममेरे भाई हैं। पर दोनों में नाते से मित्रता का खयाल अधिक है। दोनों में गहरी मित्रता है। दोनों एक जान दो कालिब हैं।

उसी दिन वंशीधर का जाना स्थिर हो गया। सीता, बहन के संग जाने के लिए रोने लगी। माँ रोती-धोती लड़की की बिदा की सामग्री इकट्ठा करने लगी। जानकीदेई भी रोती ही रोती तैयार होने लगी। कोई चीज भूलने पर आवाज से माँ को याद भी दिलाती गई। एक बजने पर स्टेशन जाने का समय आया। अब गाड़ी या इक्का लाने कौन जाय ? ससुरालवालों की अवस्था अब आगे की-सी नहीं कि दो-चार नौकर-चाकर हर समय बने रहें। सीता के बाप के न रहने से काम बिगड़ गया है। पैसेवाले के यहाँ नौकर-चाकरों के सिवा और भी दो चार खुशामदी घेरे रहते हैं। छूछे को कौन पूछे ? एक कहाँरिन है; सो भी इस समय कहीं गई है। सालेगाम की तबीयत अच्छी नहीं। वे हर घड़ी बिलौने से बातें करते हैं। तिस पर भी आप कहने लगे—“मैं ही

धीरे-धीरे जाकर कोई सवारी ले आता हूँ। नजदीक तो है। वंशीधर बोले—नहीं, नहीं, तुम क्यों तकलीफ करोगे! मैं ही जाता हूँ।”

जाते जाते वंशीधर विचारने लगे कि इक्के की सवारी तो भले घर की स्त्रियों के बंठने के लायक नहीं होती। क्योंकि एक तो उतने ऊँचे पर चढ़ना पड़ता है; दूसरे पराये पुरुष के संग एक साथ बैठना पड़ता है। मैं एक पालकीगाड़ी ही कर लूँ। उसमें सब तरह का आराम रहता है। पर जब गाड़ीवालों ने डेढ़ रुपया किराया माँगा, तब वंशीधर ने मन में कहा—“चला इक्का ही सहो। पहुँचने से काम। कुछ नवलकिशोर तो यहाँ से साथ हैं नहीं। इलाहाबाद में देखा जायगा।” वंशीधर इक्का ले आये और जो कुछ असबाब था इक्के पर रखकर आप भा बैठ गये। जानकीदेई बड़ी विकलता से रोती हुई इक्के पर जा बैठी। पर इस अस्थिर संसार में स्थिरता कहाँ? यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इक्का जैसे जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे ही वैसे जानकीदेई की रुलाई भी कम होती गई। सिकरौल के स्टेशन के पास पहुँचते-पहुँचते जानकीदेई अपनी आँखें अच्छी तरह पोंछ चुकी थी दोनों चुपचाप चले जा रहे थे, कि अचानक वंशीधर की नजर अपनी धोती पर पड़ी; और—“अरे एक बात तो हम भूल ही गये।” कहकर पछता-सा उठे। इक्के वाले के कान बचाकर जानकीदेई ने पूछा,—“क्या हुआ? क्या कोई जरूरी चीज भूल आये?”

“नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था, सो भूलकर विलायती ही पहन आये। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गये हैं। देखेंगे ता दो-चार सुनाये बिना न रहेंगे। और बात भी ठीक है। नाहक विलायती चीजें मोल लेकर

क्यों रुपए की बरबादी की जाय ? देशो लेने से भी दाम लगेगा सही; पर रहेगा तो देश में ।”

जानकीदेई जरा भौंहे ठेढ़ी करके बोली,—“उँह, धोती तो धोती; पहिने से काम । क्या यह बुरी है ?”

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आ घेरा । वंशीधर एक कुली करके चले । इतने में इक्केवाले ने कहा—“इधर से टिकट लेते जाइए । पुल के उस पार तो ड्योढ़े दरजे का टिकट मिलता है ।”

वंशीधर फिरकर बोले,—“अगर मैं ड्योढ़े दरजे का ही टिकट लूँ तो ?”

इक्केवाला चुप हो रहा । “इक्के की सवारी देखकर इसने ऐसा कहा”—यह कहते हुए वंशीधर आगे बढ़े । यथासमय रेल पर बैठकर वंशीधर राजगाट पार करके मुगलसराय पहुँचे । वहाँ पुल लाँचकर दूसरे प्लेटफार्म पर जा बैठे । आप नवल से मिलने की खुशी में प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक टहलते रहे । देखते देखते गाड़ी का धुआँ दिखलाई पड़ा । मुमाफिर अपनी अपनी गठी संभालने लगे । रेलदेवी भी अपनी चाल धीमी करती हुई गम्भी ता से आ खड़ी हुई । वंशीधर एक बार चलती हुई गाड़ी की में शुच से आखीर तक देख गये । पर नवल का कहीं पाव नहीं । वंशीधर फिर सब गाड़ियों को दोहरा गये, तेहरा गये; भीतर घुम घुम कर एक एक डिब्बे को देखा । किन्तु नवल न मिले । अन्त को आप खिजला उठे और सोचने लगे कि “मुझे अच्छा उल्लू बनाया । अच्छा जायेंगे कहाँ ? भेंट होने पर समझ लूँगा ।” सबसे अधिक सोच तो इस बात का था कि जानकी सुनेगी तो ताने पर ताना मारेगी । पर अब सोचने का समय नहीं । रेल भी बात ठहरी । वंशीधर भट गये और जानकी को लाकर जनानी गाड़ी में बिठाया । वह पूछने लगी,—“नवल की

बहु कहाँ है ?” “वह नहीं आये, कोई अटकाव हो गया।” कह कर आप बगलवाले डिब्बे में जा बैठे। टिकट तो ड्योढ़े का था; पर ड्योढ़े का डिब्बा कलकत्ते से आनेवाले मुसाफिरों से भरा था। इसलिए तीसरे दरजे ही में बैठना पड़ा। जिस गाड़ी में वंशीधर बैठे थे उसके सब डिब्बे में मिलाकर कुल दस ही बारह स्त्री-पुरुष थे। समय पर गाड़ी छूटी। नवल की बातें, और न जाने क्या अगड़-बगड़, सोचते सोचते गाड़ी कई स्टेशन पास करके मिरजापुर पहुँची।

(३)

मिरजापुर में पेटराम की शिकायत शुरू हुई। उसने सुझाया कि इलाहाबाद पहुँचने में अभी देरी है। चलने के झूट में अच्छी तरह उसकी पूजा किये बिना ही वंशीधर ने बनारस छोड़ा था। इसलिए आप झूट प्लेटफार्म पर उतरे; और पानी के बम्बे से हाथ मुँह, धोकर, एक खोनचेवाले से थोड़ी सी ताजी पूड़ियाँ और मिठाई लेकर, निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया। पीछे से जानकी की सुब आई। सोचा कि पहले पूछ लें, तब कुछ मोल लेंगे क्योंकि स्त्रियाँ नटखट होती हैं। वे रेल पर खाना पसन्द नहीं करतीं। पूछने पर वही बात हुई। तब वंशीधर लौटकर अपने डिब्बे में आ बैठे। यदि वे चाहते तो इस समय ड्योढ़े में बैठ जाते; क्योंकि अब भीड़ कम हो गई थी पर उन्होंने कहा, थोड़ी देर के लिए कौन बखेड़ा करे।

वंशीधर अपने डिब्बे में बैठे तो दो एक मुसाफिर अधिक देख पड़े। आगेवालों में से एक उतर भी गया था। जो लोग थे सब तीसरे ही दरजे के योग्य जान पड़ते थे, अधिक सभ्य कोई थे तो वंशीधर ही थे। उनके डिब्बे के पासवाले डिब्बे में एक भले घर की स्त्री बैठी थी। वह बेचारी सिर से पैर तक ओढ़े,

सिर मुकाये, एक हाथ लम्बा घूँघट काढ़े, कपड़े की गठरी-सी बनी बैठी थी। वंशीधर ने सोचा कि इनके संगवाले भद्र पुरुष के आने पर उनसे बातचीत करके समय बितावेंगे। एक-दो कर के तीसरी घंटी बजी। तब वह छी कुछ अकचकाकर, थोड़ा-सा मुँह खोल, जंगले से बाहर देखने लगी। ज्यों ही गाड़ी छूटी, वह मानो काँप-सी उठी। रेल का देना लेना तो हो ही गया था। अब उसको किसी की क्या परवाह ? वह अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी। प्लेटफार्म पर भीड़ भी न थी। केवल दो चार आदमी रेल की अन्तिम विदाई तक खड़े थे। जब तक स्टेशन दिखलाई दिया तब तक वह बेचारी बाहर ही देखती रही फिर अस्पष्ट स्वर से रोने लगी। उस कमरे में तीन चार प्रौढ़ा प्रामीण स्त्रियाँ भी थीं। एक जो उसके पास ही थी कहने लगी—

“अरे इनकर मनई तो नहीं अइलेन। हो देख हो रोवल कर थईन।”

दूसरी—“अरे दुसर गाड़ी में बैठा होई हैं।”

पहली—“दुर बौरही ! ई जनानी गाड़ी थोड़े है।”

दूसरी—‘तऊ हो भल् तो कहू।’ कहकर दूसरी भद्र महिला से पूछने लगी,—“कौने गाँव उतरबू बेटा ! मीरजैपूरा चड़ी हऊ न ?” इसके जवाब में उसने कहा सो वह यह न सुन सकी। तब पहली बोली—“हट हम पुंछिलान; हम कहा काहां उतरबू हो ? आँय ईलाहाबास” ?

“दूसरी—“ईलाहाबास कौन गाँव हो गोईयों ?”

पहिली—“अरे नाही जन्नलू ? पैयाग जो जाहाँ मनई मकर नाइए जाला।”

दूसरी—“भला पैयाग जी काहे न जानीथ, ले, कहै कै नाही, तोहने पच के धरम से चार दाँई नहाए चुकी हइ। एसों हो सोम-

बारी, अउर गहन, दका, दका, लाग रहा तउन तोहरे काशी जी नौंहाय गइ रहे !”

पहिली—“आवे जायके तौ सब अउते जाता बटले बाटेन । फुन यह साइत बिचारो बिपत में न पड़ल बाटिन । हैं हम पचाहइ राजघाट टिकस कटउली; मोंगल के सरायँ उतरलीह; होदे पुनः चढलीह ।”

दूसरी—ऐसे एक दौड़ हम आवत रहे । एक मिली औरो मोरे सँघे रही । द कोने टिसनीया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतँइ हैं गड़िया खुली । अब भईया उः गरा फाड़ फाड़ नरियाय—ए साहब गड़िया खड़ी कर ! ए साहब तैनी खड़ी कर “भला गड़िया दहिनाती काहै के खड़ी होय ?”

पहली—“उ मेहररूवा बड़ी उजबक रहल । भला केहू के चिल्लाए से रेलीऔ कहुँ खड़ी होला ?”

इसकी इस बात पर कुल कमरेवाले हँस पड़े । अब जितने पुरुष स्त्रियों थीं; एक से एक अनोखी बातें कहकर अपने अपने तजुरबे बयान करने लगीं । बीच-बीच में उस अकेली अबला की स्थिति पर भी दुःख प्रकट करती जाती थीं ।

तीसरी स्त्री बोली—“टीकसिया पल्ले बाय दनाँही ! सद्देबवा सुनि तो कलकत्ते ताई ले मसुलिया लेई । अरे इहो ता नौंही कि दूर से आवत रहलेन, फरागत के बदे उतरलेन ।”

चौथी—“हम तो इनके सँघे के आदमी के देखबो न किहा गोइयाँ !”

तीसरी—“हम ! देखे रहली हो, मजेक टोपी दिहले रहलेन की ।”

इस तरह उनकी वे सिर पैर की बातें सुनते सुनते वंशीधर ऊब उठे । तब वे उन स्त्रियों से कहने लगे—

“तुम तो नाहक उन्हें और भी डरा रही हो। जरूर इलाहाबाद तार गया होगा और दूसरी गाड़ी से वे भी वहाँ पहुँच जायँगे। मैं भी इलाहाबाद ही जा रहा हूँ। मेरे संग भी स्त्रियाँ हैं। जो ऐमा ही है तो दूसरी गाड़ी के आने तक मैं स्टेशन ही पर ठहरा रहूँगा। तुम लोगों में से यदि कोई प्रयाग उतरे तो थोड़ी देर के लिए स्टेशन पर ठहर जाना। इनको अकेले छोड़ देना उचित नहीं ! यदि पता मालूम हो जायगा तो मैं इन्हें इनके ठहरने के स्थान पर भी पहुँचा दूँगा।”

वंशीधर की इन बातों से उन स्त्रियों की वाक्यधारा दूसरी ओर बह चली,—“यह बात तो आप भल कही। नाही भइया ! हम पचे क हिके केहू से कुछ कही। अरे एक के एक करत न बाय तो दुनिया चलत कैसे बाय !” इत्यादि ज्ञान-गाथा होने लगी। कोई कोई तो उस बेचारी को सहारा मिलते देख खुश हुए और कोई कोई नाराज भी हुए। क्यों, सो मैं आप से नहीं बतला सकता। उस गाड़ी में जितने मनुष्य थे, सभी ने इस विषय में कुछ न कुछ कह डाला था। पिछले डिब्बे में केवल एक स्त्री जा फरासीसी छीट की दुलाई ओढ़े अकेली बैठी थी, कुछ नहीं बोली। कभी कभी घूँघट के भीतर से एक आँख निकालकर वंशीधर की ओर वह ताक देती थी और सामना हो जाने पर फिर मुँह फेर लेती थी। वंशीधर सोचने लगे कि “यह क्या बात है ? देखने में तो यह भले घर की मालूम होती है, पर आचरण इसका अच्छा नहीं।”

गाड़ी इलाहाबाद के पास पहुँचने को हुई। वंशीधर उस स्त्री को धीरे-धीरे दिलाकर आकाश-पाताल सोचने लगे। यदि तार मैं कोई खबर न आई होगी तो दूसरी गाड़ी तक स्टेशन पर ही ठहरना पड़ेगा। और जो उससे भी कोई न आया तो क्या करूँगा ?

जो हो गाड़ी नैनी से छूट गई। अब साथ ही उन अशिक्षित स्त्रियों ने फिर मुँह खोला। “क भइया, जो केहू बिन टिकस के आवत होय तो ओकर का सजाय होला ?” “अरे ओका ई नाही चाहत रहा कि मेहरारू के तो बैठा दिहलेन, अउर अपुआ तऊन टिकस लेई के चल दिहलेन।” किसी किसी आदमी ने तो यहाँ तक दौड़ मारी कि रात में वंशीधर इसके जेवर छीनकर रफूचककर हो जायँगे। उस गाड़ी में एक लाठीवाला भी था। उसने खुल्लमखुल्ला कहा—“का बाबू जी ! कुछ हमरो साफ़ ?” इसकी बात पर वंशीधर क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने उसे खूब धमकाया। उस समय तो वह चुप हो गया; पर इलाहाबाद उतरता तो वंशीधर में बदला लिये बिना न रहता।

(४)

वंशीधर इलाहाबाद में उतरे। एक बुढ़िया को भी वहीं उतरना था। उससे उन्होंने कहा कि—“उनको भी अपने संग उतार लो।” फिर उस बुढ़िया को उस स्त्री के पास बिठाकर आप जानकी को उतारने गये। जानकी से सब हाल कहने पर वह बोली—“अरे जाने भी दो; किस बखेड़े में पड़े हो।” पर वंशीधर ने न माना। जानकी को और उस भद्र महिला को एक ठिकाने बिठाकर आप स्टेशन मास्टर के पास गये। वंशीधर के जाते ही वह बुढ़िया, जिसे उन्होंने रखवाली के लिए छोड़ा था, किसी बहाने भग गई। स्टेशन मास्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि कोई तार नहीं आया। अब तो वंशीधर बड़े असमझस में पड़े। टिकट के लिए बखेड़ा होगा क्योंकि वह स्त्री बे-टिकट है। लौटकर आये तो किसी को न पाया। “अरे ये सब कहाँ गई ?” यह कहकर चारों तरफ देखने लगे। कहीं पता नहीं। इस पर वंशीधर घबराये। “आज कैसी बुरी साइत में घर से निकले कि

एक के बाद दूसरी आफत में फँसते चले आ रहे हैं।” इतने में आपने सामने दुलाई वाली को आते देखा। “तू ही उन स्त्रियों को कहीं ले गई है।” इतना कहना था कि दुलाई से मुँह खोल कर नवकिशोर खिलखिला उठे।

“अरे, यह क्या? सब तुम्हारी ही करतूत है! अब मैं समझ गया। कैसा गजब तुमने किया है? ऐसी हँसी मुझे नहीं अच्छी लगती। मालूम होता है वह तुम्हारी ही बहू थी। अच्छा, तो वे लोग गईं कहाँ?”

“वे लोग तो पालकी गाड़ी में बैठे हैं। तुम भी चलो।”

“नहीं मैं सब हाल सुन लूँगा तब चलूँगा। हाँ यह तो कहो, तुम मिरजापुर में कहाँ से आ निकले?”

“मिरजापुर नहीं मैं तो कलकत्ते से, बल्कि मुगलसराय से, तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ। तुम जब मुगलसराय में मेरे लिए चक्कर लगाते थे तब मैं झोंढ़े दरजे में ऊपर वाले बेंच पर लेटे तुम्हारा तमाशा देख रहा था। फिर मिरजापुर में जब तुम पेट के धन्धे में लगे थे, मैं तुम्हारे पास से निकल गया पर तुमने न देखा। मैं तुम्हारी गाड़ी में जा बैठा। सोचा कि तुम्हारे आने पर प्रकट होऊँगा। फिर थोड़ा और देख लें, करते करते यहाँ तक नौबत पहुँची। “अच्छा अब चलो, जो हुआ उसे माफ करो!”

यह सुनकर वंशीधर प्रसन्न हो गये। दोनों मित्रों में बड़े प्रेम से बातचीत होने लगी। वंशीधर बोले—“मेरे ऊपर जो कुछ बीती सो बीती, पर वह बेचारी, जो तुम्हारे से गुनवान के संग पहली ही बार रेल से आ रही थी, बहुत ही तंग हुई। उसे तो तुमने नाहक रुलाया।” वह बहुत ही डर गई थी।

“नहीं जी! डर किस बात का था? हम, तुम दोनों गाड़ी में न थे?”

“हाँ, पर यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न ?”

“अरे तो क्या मैं मर थोड़े ही गया था ! चार हाथ की दुलाई की बिसात ही कितनी ?”

इसी तरह बातचीत करते करते दोनों गाड़ी के पास आये, देखा तो दोनों मित्र-बधुओं में खूब हँसी हो रही रही है। जानकी कह रही थी—“अरे तुम जानो क्या ! इन लोगों की हँसी ऐसी ही होती है। हँसी में किसी के प्राण भी निकल जायँ तो भी इन्हें दया न आवे।”

खैर दोनों मित्र अपनी अपनी घरवाली को लेकर राजी-खुशी घर पहुँचे और मुझे भी उनकी यह राम-कहानी लिखने से छुट्टी मिली।

उसने कहा था

[श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी]

(१)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जवान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकाट-वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पैरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नोक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग चक्करदार गलियों में—हर एक लड्डीवाले के लिये ठहर कर, सत्र का समुद्र उमड़ा कर,—‘बचो खालसा जी’, हटो, भाईजी’, ‘ठहरना भाई’, ‘आने दो लालाजी’, ‘हटो बाछा’,—कहते हुए सफेद फेटों, खच्चरों और बतकों, गन्ने और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि ‘जी, और साहब’ बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती है। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट

जा, जीणे-जोगिये, हट जा, करमाँवालिए; हट, जा, पुत्ता प्यारिए; बच जा, लम्बी वालिए—समष्टि मे इसका अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है ? बच जा ।

ऐसे बंबू-काटवालों के बीच में होकर एक लड़का और लड़की चौक की दूकान पर आ मिले । उसके वालों और इसके ढोले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं । वह अपने मामा के केश धोने के लिये दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ । दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था ।

‘तेरे घर कहाँ है ?’

‘मगरे में,—और तेरे ?’

‘भाफे में;—यहाँ कहाँ रहती है ?’

‘अतरसिह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं ।’

‘मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु-बाजार में है ।’

इतने में दूकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा । सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले । कुछ दूर जाकर लड़के ने मुसकराकर पूछा—

‘देरी कुड़माई (सगाई) हो गई ?’ इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर ‘धत्’ कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया ।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले के यहाँ, या दूधवाले के यहाँ, अकस्मात् दोनों मिल जाते । महीना भर यही हाल रहा । दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, ‘तेरी कुड़माई हो गई ?’ और उत्तर में वही ‘धत्’ मिला । एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसो

में चिढ़ाने के लिये पूछा तब लड़की, कड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—‘हाँ, हो गई ।’

‘कब ?’

‘कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू ।’ लड़की भाग गई । लड़के ने घर की राह ली । रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढंकेल दिया, एक छावड़ीवाले (खोमचे वाले) की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभी वाले के ठेले में दूध उड़ेल दिया । सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवो से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई । तब कहीं घर पहुँचा ।

(२)

‘राम राम यह भी कोई लड़ाई है । दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं । लुधियाने से दश-गुना जाड़ा, मेह तथा बरफ ऊपर से । पिडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं । रानीम कहीं दिखाता नहीं,—घंटे दो घंटे कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरता उछल पड़ती है । इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े । नगर-कोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पच्चीस जलजले होते हैं । जो व/ी खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चाकू से गोली लगती है । न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं, या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं ।’

‘लहनामिह, और तीन दिन हैं । चार तो खंदक में बिता दिये । परसों ‘रिलीफ’ आजायगी और फिर सात दिन की छुट्टी । अपने हाथों ‘भटका’ करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे । उसी फिरंगी मेम के बाग में—मखमल की सी हरी घास है । फल और दूध भी वर्षा कर देती है । लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आये हो ।’

“चार दिन तक पलक नहीं भँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाय फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्नन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—”

नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?” सूबेदार हजारा-सिंह ने मुस्कराकर कहा—“लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?”

“सूबेदारजी, सच है” लहनासिंह बोला—“पर करें क्या? हड्डियों में जो गड़वा घँस गया है। सूर्य निकला नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियाँ के से सोते भर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गर्मी आजाय।”

“उद्मी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार जने वाल्टियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे” यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गढ़ला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—“मैं पाधा (पुरोहित) बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!” इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर

कहा—“अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब में नहीं मिलेगा।”

“हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमाव जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।”

“लाड़ी होगी (स्त्री) को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—”

“चुप कर। यहाँ वालों को शरम नहीं।”

“देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तमाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुग मान गया, अब मेरे मुल्क के लिये लड़ेगा नहीं।”

‘अच्छा अब बोधासिंह कैसा है ?’

“अच्छा है।”

“जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात-भर अपने दोनों कंबल उमे उढ़ाते हो और आप सिकड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो, अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और निमोनिया’ से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।”

“मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मारूँगा भाई वीरतसिंह की गोदी पर मेरा धिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के आम के पेड़ की छाया होगी।”

वजीरसिंह ने तयारी चढ़ाकर कहा—“क्या मरने-मराने की बात लगाई है ! मरें जर्मन और तुर्क ! हाँ भाइयो, कुछ गाओ।”

कौन जानता था कि दाढ़ियों वाले, घरबारी सिख गंदे गीत गाँयेंगे, पर सारी खन्दक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानो चार दिन से सोते और मौजूद ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर गान गइं। अंगरेज है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधमिह खाली त्रिसकुटों के तीन टीनों पर अपने दोनों कमल चिन्हा कर और लहनासिंह के दो कमल और एक बरानकोट ओढ़कर सो रहा है। लहनामिह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधमिह कराहा।

“क्यों बोधा भाई, क्या है ?”

“पानी पिला दो।”

लहनामिह ने कटोरा उमके मुँह से लगा कर पूछा—“को कैसे हो ?” पानी पीकर बोधासिंह बोला—“कपकपी छुट रही है। रोन-रोन में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।”

“अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।”

“और तुम ?”

“मेरे पास मिगड़ी (अंगीठी) है और मुझे गर्मी लगती है, बसीना आ रहा है।”

“ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिये—

“हाँ याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुन कर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।” यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

“सच कहते हो ?”

“और नहीं भूठ ?” यों कह कर नहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहनादी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा, केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता, इतने में खाई के मुँह से आवाज आई “सूबेदार हजारासिंह !”

“कौन ? लपटन साहब ! हुकुम हुआ” कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

“देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले, उनमें जा मिलो। खंदक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।”

“जो हुक्म।”

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उँगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी धौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था, समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये और जेब में रिगट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर—“लो तुम भी पयो।”

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुँह का

भाव छिपा कर बोला—“लाओ साहब।” हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहीं उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के मे कटे हुए बाल कहीं से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

“क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?”

“लड़ाई खतम होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं।”

“नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहीं ? याद है, पार-साल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी के जिले में शिकार करने गये थे—“हाँ, हाँ—वही जब आप खोते (गधे पर) सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ?” “बेशक, पाजी कहीं का—“सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्टे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजीमेंट की मैस में लगायेंगे।” “हाँ, पर मैंने वह विलायत भेज दिया—“ऐसे बड़े-बड़े सोंग ! दो-दा फुट के तो होंगे।”

“हाँ, लहनासिंह, दो फुट चार इञ्च के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?”

“पीता हूँ साहब, दियाभलाई ले आता हूँ”—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया था कि क्या करना चाहिये।

अन्धेरे में किसी मोने वाले से वह टकराया ।

“कौन ? बज़ीरासिंह !

“हाँ क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ? जरा तो आँख लगाने दी होती ?”

“होरा में आओ । कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है ।”

“क्या !”

लपटन साहब या तो मारे गये हैं, या कैद हो गये हैं । उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन आया है । सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा । मैंने देखा है और बातें की हैं । सोहरा (मसुरा) साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू । और मुझे पीन को सिगरेट दिया है ।”

“तो अब ?”

“अब मारे गये । धोखा है ! सूबेदार बीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा । इधर उन पर खुले में धावा होगा । उठो, एक काम करो । लपटन के पैरों के निशान देखते देखते दौड़ जाओ । अभी बहुत दूर न गये होंगे । सूबेदार से कहो कि एकदम लौट आवें । खन्दक की बात भूठ है । चले जाओ, खन्दक के पीछे से निकल जाओ । पत्ता तक न खड़के । देर मत करो ।”

“हुकुम तो यह है कि यहीं—”

“ऐभी तै ही हुकम की ! मेरा हुकम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकम है । मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ ।”

“पर यहाँ तो तुम आठ ही हो !”

“आठ नहीं, दस लाख । एक-एक अकालिया सिख सवा-लाख के बराबर होता है । चले जाओ ।”

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनामिह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बैज्ञ के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों से एक तार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा बाहर की तरफ जाकर एक दिशामलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उलटी बन्दूक बो उठाकर लहनामिह ने साहब की कुइनी पर तानकर दे मारा। घमाफे के साथ साहब के हाथ से दियामलाई 'गर पड़ी। लहनामिह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा और साहब "आह ! माई गाड़े" कहते हुए विलुप्त हो गये। लहनामिह ने तीनों गोले बीन कर खन्दक के बाहर फेंके और साहब बो घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनामिह हँस कर बोला—“क्यों लपटन साहब मिज्जाज कैसा है ? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नील गायेँ होती हैं और उनके दो फुट चार इञ्च के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियाँ पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसा साफ उद्गूँ कहाँ से साँख आये ? हमारे लपटन साहब तो बिना “डैम” के पाँव लकड़ भी नहीं बोला करते थे।

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानां जाड़े से बचने के लिये दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनामिह कहता गया—“चालाक तो बड़े हो, पर माफे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा

देने के लिये चार आँखें चाहिएँ। तीन महीने हुए एक तुरकों मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों के बच्चे होने के ताबोज बाँटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मजा (चारपाई) बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले डिप हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की बिद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोलहूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जो की दाँदी मुँड़ दो थी और गाँव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—”

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जाँघ में गोली लगी, इधर लहना की ‘इनरी मार्टिनी’ के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया:—“क्या है ?”

लहनासिंह ने उसे तो यह कर सुला दिया कि “एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया” और औरों से सब हाल कह दिया। बन्दूकें लेकर सब तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले घावे को रोका। दूसरे को रोका पर यहाँ थे आठ—(लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था और लेटे हुए थे)—और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज आई “वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !” और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौक़े पर जर्मन दो चक्कों के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—“अकाल सिक्खों दी फौज आई ! वाह गुरुजी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत श्री अकाल पुरष !!!” और लड़ाई खत्म हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये।

सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को बन्दक की गोली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफ़ा कसकम कमर-बन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था। ऐसा चाँद जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ ‘क्षयी’ नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्ट की भाषा में ‘दन्तवीणोपदेशाचार्य’ कहलाती। बजीरासिंह कह रहा था कि जैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुन और काराज्जात पाकर, उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर खाईवालों

ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से फ्लपट दो डाक्टर और दो बीमार होने की गाड़ियाँ चलीं, जो दोई डेढ़ घण्टे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल तज्जदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायँगे, इसलिये मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाश रखी गई। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बाँधनी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायगा। बाधासिंह ज्वर में बर्ग रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की भौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।

“और तुम ?”

“मेरे लिये वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिये भी तो गाड़ियाँ आनी होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है, देखते नहीं मैं गड़ड़ा हूँ। वजीरासिंह मेरे पास है ही।”

“अच्छा, पर—”

“बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो सूबेदारनी-होराँ की चिट्ठी लिखो तो मेरा मर्या टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझ से जो सन्धोंने कहा था वह मैंने कर दिया।”

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—“तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेँगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?”

“अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कुछ कहा वह लिख देना और कह भी देना।”

गाढ़ी के जाते ही लहना लेट गया। “बजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।”

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रङ्ग साफ होते हैं; समय की धुन्ध बिल्कुल उन पर से हट जाती है।

+ + + +

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतनगर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ सब्जीवाले के यहाँ हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़-ई हो गई ? तब ‘धत्’ कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—“हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूनों वाला सालू ?” सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

“बजीरासिंह, पानी पिला दे।”

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहन सिंह नं० ७३ राइफल में जमादार हो गया। उस आठ वष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कमी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकदमें की पैरबी करने वह अपने घर गया वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोरसिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे।

सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकल कर आया । बोला—“लहना, सूबेदारनी तुमको जानती हैं । बुलाती हैं । जा मिल आ ।” लहनासिंह भीतर पहुँचा सूबेदारनी मुझे जानती हैं कब से ? रोजमैंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं । दरवाजे पर जाकर ‘मत्था टेकना’ कहा । असीस सुनी लहनासिंह चुप ।

“मुझे पहचाना ?”

“नहीं”

“तेरी कुड़माई हो गई—धत—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटे वाला सालू—अमृतसर में—”

भाबों की टकराहट से मूर्छा खुली । करवट बदली पसलों का घाव बह निकला ।

“बजीरा, पानी पिला”—उसने कहा था ।

स्वप्न चल रहा है । सूबेदारनी कह रही है—“मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया । एक काम कहती हूँ । मेरे तो भाग फूट गये । सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है । सरकार ने तीमियों (स्त्रियों) को एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ! एक बेटा है । फौज में भरती हुए उसे एक ही वर्ष हुआ । उसके पीछे चार और हुए पर एक भी नहीं जिया ।” सूबेदारनी रोने लगी—अब दोनों जाते हैं । मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन ताँगेवाले का घोड़ा दही वाले की दूकान के पास बिगड़ गया था । तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे । आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया । ऐसे ही इन दोनों को बचाना । यह मेरी भिन्ना है । तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ ।”

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

“वजीरासिंह, पानी पिला”—उसने कहा था।

+ + + +

लहना का सिर अपनी गोदी पर रखे वजीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक रुप रहा, फिर बोला—

“कौन ? कीरतसिंह !”

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—“हां।”

“भइया, मुझे और ऊँचा कर ले अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।”

वजीरा ने वैसा ही किया।

“हां, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अब के हाड़ (आषाढ़) में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजे दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने मैंने इसे लगाया था।”

वजीरासिंह के आंसू टप् टप् टपक रहे थे।

+ + + +

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—

फ्रांस और वेलजियम—६८ बीं सूची-मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफलस, जमादार लहनासिंह।

आकाश-दीप

[श्री जयशंकर प्रसाद]

“बन्दी !”

“क्या है ? सोने दो !”

“मुक्त होना चाहते हो ?”

“अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो ।”

“फिर अवसर न मिलेगा ।

“बड़ा शीत है, कहीं से एक कम्बल ढालकर कोई शीत से मुक्त करना ।”

“आँधी की संभावना है । यही अवसर है । आज मेरे बन्धन शिथिल हैं ।”

“तो क्या तुम भी बन्दी हो ?”

“हाँ, धीरे बोला । इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं ।”

“शस्त्र मिलेगा ?”

“मिल जायगा । पोत से सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे ?”

“हाँ ।”

समुद्र में ढिलोरेँ उठने लगीं । दोनों बन्दी आपस में टकराने लगे । पहले बन्दी ने अपने को स्वतन्त्र कर लिया । दूसरे का बन्धन खोलने का प्रयत्न करने लगा । लहरों के धक्के एक दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे । मुक्ति की आशा—स्नेह का असम्भावित आलिंगन । दोनों ही अन्धकार में मुक्त हो गए ।

दूसरे बन्दी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बन्दी ने कहा—“यह क्या ? तुम खो हो ?”

“क्या खी होना कोई पाप है ?” अपने को अलग करते हुए खी ने कहा।

“शख कहाँ है ? तुम्हारा नाम ?”

“चम्पा।”

तारक-खवित नील अम्बर और नील समुद्र के अवकाम में बचन ऊधम मचा रहा था। अन्वकार से भिलकर पनन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आन्दोलन था। नौका लहरों में ढक्कल थी। खी सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मत्वाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकाल कर फिर लुढ़कते हुए, बन्दी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथप्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—“आँधी !”

आपात्ति-सूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्ती पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी लुढ़क कर उस रज्जु के पास पहुँचा जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गए। तरंगें उद्वेलित हुईं। समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी, मिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-वीक्ष और अट्टहास करने लगी।

एक मटके के साछ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बन्दी खिलखिला कर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(२)

अनन्त जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणें और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी।

सागर शान्त था । नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं । बन्दी मुक्त हैं ।

नायक ने कहा—“बुद्धगुप्त ! तुमको मुक्त किसने किया ?”

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा—“इसने ।”

नायक ने कहा—“तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा ।”

“किसके लिए ? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—
नायक ! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ ।”

“तुम ? जलदस्यु बुद्धगुप्त ? कदापि नहीं ।” चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा । चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था । वह क्रोध से उछल पड़ा ।

“तो तुम द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वही स्वामी होगा ।”—इतना कह, बुद्धगुप्त ने अपना कृपाल देने का संकेत किया । चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया ।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ । दोनों कुशल, दोनों स्वरित गतिवाले थे । बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दांतों से पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये । चम्पा, भय और विस्मय से देखने लगी । नाविक प्रसन्न हो गये, परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ कटि में डाल, उसे गिरा दिया । दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा । नायक की कायर आँखें प्राण-भित्ता माँगने लगीं ।

बुद्धगुप्त ने कहा—“बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं ?”

“मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ । मैं विश्वासघात न करूँगा ।”

बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया ।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना विहीन कर दिया । बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-विजय-तिलक कर रहे थे ।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—“हम लोग कहाँ होंगे ?”

“बालीद्वीप से बहुत दूर, संभवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है । सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है ।”

“कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे ?”

“अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में । तब तक के लिए स्नाय का अभाव न होगा ।”

सहसा नायक ने नाविकों को डाँढ़ लगाने की आज्ञा दी, और स्वयं पतवार पकड़ कर बैठ गया । बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—“यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है । सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है ।”

(३)

“तुम्हें इन लोगों ने बन्दी क्यों बनाया ?”

“वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने ।”

“तुम्हारा घर कहाँ है ?”

“जाह्नवी के तट पर, चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ । पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे । माता का देहावसान हो जाने पर मैं भा पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी । आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है । तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने हा सात दस्युओं को मार कर जल-समाधि ली । एक मास हुआ मैं इस नील नभ के नीचे, नील

जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनन्तता में निस्महाय हूँ । अनाथ हूँ । मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया । मैंने उसे गालियों सुनाई । उसी दिन से बन्दी बना दी गई ।” चम्पा रोष से जल रही थी ।

मैं भी ताम्रलिपि का एक क्षत्रिय हूँ चम्पा ! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बन कर जीवन बिताता हूँ । अब तुम क्या करोगी ?”

“मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूंगी । वह जहाँ ले जाय ।”—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं । किसी आनांदा के लाल डारें न थे । धवल अरांग में बालकों के सदृश विश्वास था । हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देख कर कांप गया । उसके मन में एक सम्भवपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी । समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रंजित सन्ध्या थिरकने लगी । चम्पा के असंयत कुत्तल उसको पीठ पर बिखरे थे । दुर्ज्ञात दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण-बालिका ! यह विस्मय से अपने हृदय को टटालने लगा । उसे एक नई वस्तु का पता चला । वह था—कीमलता !

उसी समय नायक ने कहा—“हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये ।”

वेला से नाव टकराई । चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी । मांझी भी उतरे । बुद्धगुप्त ने कहा—“जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पाद्वीप कहेंगे ।”

चम्पा हँस पड़ी ।

(४)

पाँच बरस बाद—

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में मलमल रहे थे । चंद्र

के उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरद लक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खिलों को बिखेर दिया ।

चम्पा के एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी । बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूपा में दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगुलियों से डोरी खींची । वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा । भोली-भोली आंखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं । डोरी धीरे-धीरे खींची गई । चम्पा की कामना थी कि उसका आकाश दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था । उसने आशा-भरी आंखें फिरा लीं ।

सामने जल-रशि का रजत शृंगार था । वरुण-बालिकाओं के लिए लहरों से हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैलमालाएँ बना रही थीं । और वे मायाविनी छलनाएँ अपनी हँसी का कलनाद छोड़ कर छिप जाती थीं । दूर दूर से धीवरों की वंशी की मनकार उनके संगीत सा मुखरित होता था । चम्पा ने देखा कि तरल संकुल जल-राशि में उनके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था । वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटना था । वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई । किसी को पास न देखकर पुकारा—“जया !”

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई । जंगली थी । नील नभो-मंडल से मुख में शुभ्र नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते । वह चम्पा को रानी कहती, बुद्धगुप्त की आज्ञा थी ।

“महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो ।” चम्पा ने कहा । जया चली गई !

दूरागीत पवन चम्पा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था । उसके हृदय में गुदगुरी होरही थी । आज न जाने क्यों

वह बेसुध था । एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर उसे चमत्कृत कर दिया । उसने फिर कहा—
“बुद्धगुप्त ।”

“बाबली हो क्या । यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, दुम्हें यह काम करना है ?

“क्षीरार्नाविषयायी अनन्त की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाश-दीप जलाऊँ ?”

“हाँ आती है । तुम किसको दीप जला कर पथ दिखलाना चाहती हो ! उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है ?”

“हाँ, वह भी कर्मा भटकते है, भूलते हैं; नहीं तो बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते ?”

“तो वृत्त क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चम्पा रानी !”

“मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो । अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक ! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लाद कर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे । इस जल में अगाणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में—तारिकाओं की मधुर ज्योति में—थिरकती थी ! बुद्धगुप्त ! उस विजन अनन्त में जब माँभी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे । हम तुम परिश्रम से थक कर पालों में शरीर लपेट कर एक दूसरे को मुँह क्यों देखते थे । वह नक्षत्रों की मधुर छाया—”

“तो चम्पा ! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं । तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो ।”

“नहीं नहीं, तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी, परन्तु हृदय वैसा

ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो ! मेरे आकाश-दीप पर व्यंग कर रहे हो ! नाविक ! उस प्रचंड आंधी में प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे । मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में जला कर भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी । इस समय वह प्रार्थना करती—“भगवान् ! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठोक पथ पर ले चलना ।” और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते—“साधवाँ ! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है ।” वह गद्गद् हो जाती । मेरी माँ ! आह नाविक ! यह उसी की स्मृति है । मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण जलदस्त्यु ! हट जाओ !”—सहस्रों चम्पा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा । महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था । वह ठठा कर हँस पड़ा ।

“यह क्या चम्पा ! तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो ।”—कहता हुआ चला गया । चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही ।

(५)

निर्जन समुद्र के उपकूल में बेला से टकराकर लहरें बिखर जाती हैं । पश्चिम का पथिक थक गया था । उसका मुख पीला पड़ गया अपनी शांत गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था । वह जैसे प्रकाश की उन्मलित किरणों से विरक्त था ।

चम्पा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं । तरंग से उठते पवन ने उनके वसन को अस्त-व्यस्त कर

दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आई। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

“इतना जल ! इतनी शीतलता ! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूंगी ? नहीं। तो जैसे वेला से चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन कम् ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनन्त में डूबकर बुझ जाऊँ ?”—चम्पा के देखते देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिम्ब धीरे-धीरे सिन्धु में, चौथाई—आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चम्पा ने मुँह फिरा लिया। देखा तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पाम-पास बैठ गए।

“इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखंड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती, चम्पा, तो ?”

“अच्छा होता बुद्धगुप्त ! जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।”

“आह चम्पा, तुम कितनी निर्दय हो ! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नए द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नई प्रजा खोज सकता है, नए राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा तो लेकर देखो तो……। कहो चम्पा ! वह कृपाण से अपना हृदय पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे !” महानाविक—जिसके नाम से वाली, जावा और चम्पा का आकाश गूँजता था, पवन

थर्राता था—घुटनों के बल चम्पा के सामने झलझलाई आँखों से बैठा था ।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में, विस्तृत जल-प्रदेश में नील पिंगल संध्या, प्रकृति की एक सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया, स्वप्नलोक का सृजन करने लगी । उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नील जाल का कुहक स्फुट हो उठा । जैसे मदिरा से सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया । सृष्टि नील कमलों से भर उठी । उस सौरभ से पागल चम्पा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिए । वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिन्धु का । किन्तु उस परिंभ में सहसा चैतन्य होकड़ चम्पा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया ।

‘बुद्धगुप्त ! आज मैं अपना प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ । हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया !’—चमक कर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया ।

‘तो आज मैं विश्वास करूँ ? मैं क्षमा कर दिया गया ।’—आश्चर्य-कम्पित कंठ से महानाविक ने पूछा ।

‘विश्वास ? कदापि नहीं बुद्धगुप्त ! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ ! मैं तुम्हें घृणा करती हूँ फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ । अन्धेर है जलदस्यु ! तुम्हें प्यार करती हूँ ।’—चम्पा रो पड़ी ।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बन्द करने लगी थी । दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविक ने कहा—‘इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति में एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा

चम्पा ! यहीं उस पहाड़ी पर ! सम्भव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय !”

(६)

चम्पा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी । बहुत दूर तक सिन्धु-जल में निमग्न थी । सागर का चंचल जल उस पर उद्वलता हुआ उसे छिपाए था । आज उसी शैलमाला पर चम्पा के आदि निवासियों का समारोह था । उन सबों ने चम्पा की वनदेवी-मा सजाया था । ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक और नाविकों की श्रेणी में वनकुसुम विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी ।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चम्पा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ दीप-स्तम्भ बनवाया गया था । आज उसी का महोत्सव है । बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था । शिविका से सहायता देकर चम्पा को उसने उतारा । दोनों ने भीतर पदापेण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे । पत्तियों में कुसुम-भूषण से सजा वन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं ।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चम्पा ने जया से पूछा—“यह क्या है जया ?—इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लाई ?

“आज रानी का व्याह है न ?”—कहकर जया ने हँस दिया ।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था । उसे झक-झोर कर चम्पा ने पूछा—“क्या यह सच है ?”

“यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा ! कितने वर्षों से मैं उवालामुखी को अपनी छाती से दबाए हूँ ।”

“चुप रहो महानाबिक ! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा ?”

“मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ चम्पा ! वह एक दूसरे दृष्ट्यु के शस्त्र से मरे ।”

“यदि मैं इसका विश्वास कर सकती बुद्धगुप्त ! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय ! आह ! तुम उस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते !”

जया नीचे चली गई थी । स्तंभ के संकीर्ण प्रकाश में बुद्धगुप्त और चम्पा एकांत में एक दूसरे के सामने बैठे थे ।

बुद्धगुप्त ने चम्पा के पैर पकड़ लिये । उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—“चम्पा ! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्ष से इतनी दूर इन निरीह प्राणियों में इन्द्र और शची के समान पूजित हैं । पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है । स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा ! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है ; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता ? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ ! मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चन्द्रकान्त-मणि की तरह द्रवित हुआ ।

“चम्पा ! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लाक में विश्वास नहीं करता । पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है । तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो । आलोक की एक कोमल रेखा इस निबिड़ तम में मुस्कराने लगी । पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शान्त और कान्त कामना की हँसी खिलखिलाने लगी ; पर मैं न हँस सका ।

H 2 3 45

“चलोगी चम्पा ! पोतवाहिनी पर असंख्य धन-राशि लाद कर राजरानी-सी जन्मभूमि के अंक में ? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत क लिये प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिन्धु की लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देंगे। आह आह चम्पा ! चलो।”

चम्पा ने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिये दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैनन्य होकर चम्पा ने कहा—“बुद्धगुप्त ! मेरे लिये सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है, सब पवन शीतल हैं। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्ज्वलित नहीं। सब भिला कर मेरे लिये एक शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिये, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले भाले प्राणियों के दुख की सहानुभूति और सेवा के लिये।”

“तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चम्पा ! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँगा—इसमें सन्देह है। आह ! किन लहरों में मेरा विनाश हो जाय !”—महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—“तुम अकेली यहाँ क्या करोगी ?”

“पहले विचार था कि कभी-कभी इसी दीप-स्तम्भ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।”

(७)

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चम्पा ने अपने दीप-स्तम्भ

पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चम्पा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जल-व्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, द्वीप-निवासी उस माया ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश उसकी पूजा करते थे। एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

पंच परमेश्वर

[श्री प्रेमचन्द]

(१)

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। सांभे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी सांभा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल-मन्त्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता जुमराती उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की—खूब रक्षाबियाँ माँजी, खूब प्याले धोये उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घण्टे तक किताबां से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के मनुष्य थे। शिक्षा को अपेक्षा उन्हें गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वे कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है गुरु के आशीर्वाद से होता है। वस, गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिये। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न

हुआ तो वे यह मानकर सन्तोष कर लेंगे कि मैंने इसे पढ़ाने में यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी, बिद्या उसके भाग में ही न थी तो कैसे आती ?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के क्रायल थे। उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और इसी सोटे के प्रताप से आज आस-पास के गांवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहरिर भी कलम न उठा सकता था। हलके का डाकिया, काँस्टेबल और तहसील का चपरासी सब उनकी कृपा को आकांक्षा करते थे। अतएव यदि अलगू का मान उनके धन के कारण था तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल बिद्या से ही सबके आदर-पात्र बने थे।

(२)

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पाम कुछ थोड़ी-सी मलकियत थी। परन्तु उसके निकट सम्बन्धियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे चौड़े बायदे करके मलकियत अपने नाम चढ़वाली थी। जब तक दान पत्र की रजिस्ट्री न हुई थी तब तक खाला-जान का खूब आदर सत्कार किया गया, उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाये गये। हलुआ-पुलाव की वर्षा-सी की गई, पर रजिस्ट्री की मुहर ने इन खातरदारियों पर भी मानों मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी करीमन रोटियों के साथ कड़वी बातों से कुछ तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हा गये। अब बेचारी खाला जान को प्रायः नित्य प्रति हा ऐसा बातें सुनती पड़ती थीं।

बुढ़िया न जाने कब तक जियेगी। दो तीन बोधे ऊसर क्या दे दिया है मानो मोल ले लिया है। बघारी दाल के बिना

रोटियां नहीं उतरतीं। जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके उतने से तो अब तक एक गांव मोल ले लेते।

कुछ दिन खाला-जान ने सुना और सहा, पर जब न सहा गया तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी-गृहस्वामिनी के प्रबन्ध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धो कर काम चलता रहा। अन्त में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा, बेटा ! तुम्हारे साथ मेरा निर्वाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं अलग पका-खा लूंगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया, रुपये क्या यहाँ ढलते हैं ? खाला ने नम्रता से कहा, मुझे कुछ रुखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं ? जुम्मन ने गम्भीर स्वर से जवाब दिया, तो कोई यह थोड़े समझता था कि तुम मौत से लड़ कर आई हो।

खाला बिगड़ गई। उन्होंने पंचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देख कर मन-ही-मन हँसता है। वे बोले, हाँ जरूर पंचायत करो। फैसला हो जाय। मुझे भी यह रात दिन का खटपट पसंद नहीं।

पंचायत में किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी सन्देह न था। आस-पास के गांवों में ऐसा कौन था जो उनके अनुग्रहों का ऋणी न हो ? ऐसा कौन था जो उनको शत्रु बनाने का साहस कर सके ! किस में इतना बल था जो उनका सामना कर सके ! आसमान के फरिश्ते तो पंचायत करने आवेंगे ही नहीं।

(३)

इसके बाद कई दिन तक बूढ़ी खाला हाथ में लकड़ी लिये

आसपास के गांवों में दौड़ती रही। कमर झुक कर कमान हो गई थी। एक-एक पग चलना दूभर था। मगर बात आ पड़ी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

बिरला ही कोई भला आदमी होगा जिसके सामने बुढ़िया ने दुःख के आँसू न बहाये हों। किसी ने तो यों ही ऊपरी मन से हँ हँ करके टाल दिया। किसी ने इस अन्याय पर जमाने की गालियाँ दीं और कहा, कब्र में पाँव लटके हुए हैं, आज मरे कल दूसरा जन्म हो, पर हवस नहीं मानती। अब तुम्हें क्या चाहिए? रोटी खाओ और अल्ला का नाम लो। तुम्हें खेती बारी से अब क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे जिन्हें हास्य के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुँह, सन के से बाल—जब इतनी सामाग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्याय-प्रिय, दयालु, दोन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होंने उस अबला के दुखड़े का गौर से सुना हो और उसको सान्त्वना दी हो। चारों ओर से घूमघाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बाली, बेटा! तुम भी क्षण भर के लिए मेरो पंचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुलाकर क्या करोगी! कई गाँव के आदमी तो आवेंगे ही।

खाला—अपनी विपद् तो सब के आगे रो आई हूँ; आने न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—यों आने को मैं आ जाऊँगा, मगर पंचायत में मुँह न खोलूँगा।

खाला—क्यों बेटा?

अलगू—अब इसका जवाब दूँ? अपनी खुशी! जुम्न मेरे पुराने मित्र हैं, उनसे बिगाड़ नहीं सकता।

खाला—घेटा ! क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय तो उसे खबर नहीं होती, परन्तु ललकार सुनकर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सके। उनके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे—
‘क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बातें न कहोगे ?’

(४)

सन्ध्या समय एक पेड़ के नीचे पंचायत बैठी। शेष जुम्मन ने पहले ही से फर्श बिछा रक्खा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ वे स्वयं अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ जरा दूर बैठे हुए थे। तब कोई पंचायत में आ जाता था दब दबे हुए सलाह से उसका शुभागमन करते थे। जब सूर्य अस्त होगया और चिड़ियों की कलव-युक्त पंचायत पेड़ों पर बैठी तब यहाँ भी पंचायत आरम्भ हुई। फर्श की एक एक अंगुल जमीन भर गई, पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयों में से केवल वही लोग पधारे थे, जिन्हें जुम्मन से अपनी कुछ वसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई ताबड़ तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों में। लड़कें इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाना-गलौज करते और कोई गीते थे। चारों तरफ बोलाहल मच रहा था। गांव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझकर भुण्ड-के-भुण्ड जमा हा गये थे।

पंच लोग बैठ गये तो बूढ़ी खाला ने उनसे चित्ती की।

“पंचो ! आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद

अपने भतीजे जुम्मन के नाम लिख दी थी । इसे आप लोग जानते ही होंगे । जुम्मन ने मुझे हीनहयात रोटी-कपड़ा देना कबूल किया था । तीन साल तो मैंने इसके साथ रो-धो कर काटे, पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता । मुझे न पेट की रोटी मिलती है और न तन का कपड़ा । बेकस बेवा हूँ । कचहरी-दरबार कर नहीं सकती । तुम्हारे सिवाय और किसे अपना दुःख सुनाऊँ । तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राह पर चलो । अगर मुझमें कोई ऐब देखो, मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो । जुम्मन में बुराई देखो तो उसे समझाओ । क्यों एक बेकस की आह लेता है ? पंचों कहा सर माथे पर चढ़ाऊँगी ।

रामधन मिश्र, जिनके कई आसामियों को जुम्मन ने अपने गांव में बसा लिया था, बोले जुम्मन मियाँ ! किसे पंच बदते हो ? अभी से इसका निबटारा कर लो । फिर जो पंच कहेंगे वही मानना पड़ेगा ।

जुम्मन को इस समय सदस्यों में विशेष कर वही लोग दीख पड़े जिनसे किसी न किसी कारण उनका वैमनस्य था । जुम्मन बोले, पंच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है । खाला-जान जिसे चाहें बदेँ मुझे कोई उज्र नहीं ।

खाला ने चिल्ला कर कहा, अरे अल्लाह के बन्दे । पंच का नाम क्यों नहीं बता देता ? कुछ मुझे भी तो मालूम हो !

जुम्मन ने क्रोध से कहा, अब इस वक्त मेरा मुँह न खुल-वाओ । तुम्हारी बन पड़ी है, जिसे चाहो पंच बदो ।

खाला-जान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई । बोली, बेटा ? खुदा से डरो । पंच न किसी के दोस्त होते हैं, न किसी के दुश्मन । कैसी बात कहते हो ? तुम्हारा किसी और पर विश्वास न हो तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो ? लो मैं, उन्हीं को सरपंच बनाती हूँ ।

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे, परन्तु भावों को छिपाकर बोले, अलगू चौधरी ही। मेरे लिए जैसे रामधन मिश्र वैसे अलगू चौधरी।

अलगू इस झमेले में फंसना नहीं चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे। बोले, खाला ! तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गंभीर स्वर से कहा, बेटा ! दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नहीं बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचों के मुँह से जो बात निकलती है वह खुदा की तरफ से निकलती है। अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियों ने बुढ़िया को मन में बहुत कोसा।

अलगू चौधरी बोले, शेख जुम्मन ! हम और तुम पुराने दोस्त हैं। जब काम पड़ा, तुमने हमारी मदद की है और हम से भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे हैं। मगर इस समय तुम और बूढ़ी खाला दोनों हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचों से जो कुछ अर्ज करना हो करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह दिखावे की बातें कर रहा है, अतएव शान्त-चित्त होकर बोले पंचों ! तीन साल हुए खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैंने उन्हें हीनहयात, खाना-कपड़ा देना कबूल किया था। खुदा गवाह है कि आज तक मैंने खालाजान को कोई तकलीफ नहीं दी। मैं उन्हें अपनी माँ के समान समझता हूँ कि उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है। मगर औरतों में जरा अन-बन रहती है। इसमें मेरा क्या वश है ? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग माँगती है। जायदाद जितनी है वह पंचों से छिपी नहीं है। उससे इतना मुनाफा नहीं होता कि मैं

माहवार खर्च दे सकूँ । इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नहीं, नहीं तो मैं भूलकर भी इस झमेले में नहीं पड़ता । बस मुझे यही कहना है । आइन्दा पंचों को अखित-यार है जो फैसला चाहें, करें ।

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था, अत-एव वह पूरा कानूनी आदमी था । उसने जुम्मन से जिरह करनी आरम्भ की । एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था । रामधन मिश्र इन प्रश्नों पर मुग्ध हुए जाते थे । जुम्मन चकित थे कि अलगू को क्या हो गया है ? अभी यह मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बातें कर रहा था । इतनी ही देर में ऐसी काया पलट हो गई कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है । न मालूम कब की कसर निकाल रहा है ? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ काम न आवेगी ?

जुम्मन शेख तो इसी संकल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू चौधरी ने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख ! पंचों ने इस मामले पर विचार किया । उन्हें यह नीति-संगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाय । हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके । बस, यही हमारा फैसला है । अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो तो हिब्बानामा रह समझा जाय ।

(५)

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे में आगये । जो अपना मित्र हो वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे ! इसे समय के ढेर-फेर के सिवाय और क्या कहें ? जिस पर पूरा भरोसा था उसने समय पड़ने पर धाखा दिया । ऐसे ही अवसरों

पर भूटे मच्छे मित्रों की परीक्षा हो जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है ? अगर लोग ऐसे कपटी, धोखेबाज न होते तो देश में आपत्तियों का प्रकोप क्यों होता ? यह हैजा, प्लेग, आदि व्याधियां दुष्कर्मों ही के दंड हैं।

मगर रामचन्द्र मिश्र और अन्य पंच अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता का प्रशंसा जी खोलकर कर रहे थे। वे कहते थे, इसी का नाम पंचायत है। दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती दोस्ती की जगह, किन्तु धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पर पृथ्वी ठहरी हुई है, नहीं तो वह कब की रस्मानल का चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्तों की जड़ हिला दी। अब साथ-साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुरानी मित्रता रूपी वृक्ष सत्य का एक हलका झोका भी न सह सका। सचमुच वह बालू ही की जमीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की आवश्यकता ज्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

(६)

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है, पर बुरे कामों की मिद्धि में यह बात नहीं। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत्य अन्धड़ी जोड़ा मोल लाये थे। बैल पछाही जाति के सुन्दर बड़े-बड़े सींगों वाले थे। महीनों तक आस-पास

के गाँव के लोग उसके दर्शन करते रहे ! दैवयोग में जुम्मन की पंचाशत के एक हा महीने बाद इस जोड़ी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्ती ले कर, यह दरा'बाजी की सजा है। इंसान सब भले ही कर जाय, खुदा नेक बंद सब देखता है। अलगू को सन्देश हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा, जुम्मन ने कुछ करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों दैवियों ने शब्द-बाल्य की नदी बहा दी। व्यंग्य, वक्रोक्ति, अन्याक्ति और उभय आदि अलंकारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उसने अपनी पत्नी को डाँट-डपट कर समझा दिया। वे उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गये। उर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्क पूर्ण सोटे ने लिया।

अब अकेला बैल किस काम का ? उसका जेँड़ा बहुत ढूँढ़ा गया, पर न मिला। विदाम यह सलाह ठहरी कि इस बैल डालना चाहिये। गाँव के एक समझू साहू थे, वे दूकान-गाड़ी हाँकते थे। गाँव में गुड़, पालाद कर वे मंटी ले जाते, मंडा से तेल नमक भर लाते और गाँव में बेचते। इन बैल पर उनका मन लग गया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे तो दूध भर में बेखटक तो खेई हा। आँकन तो एक ही खेक लाले पड़े रहत हैं। बत देना, गाड़ी में दोड़ाया, बाल-भौंरो की पहचान कराई, मोल ताल किया और उसे लाकर द्वार पर बाँध दिया। एक महीने में दाम चुकाने का वायदा ठहरा। चौधरी को भी गरज हा थी, घाटे का परवाह न की।

समझू साहू ने नया बैल पाया तो लगे रगेदने। वे दिन में

तीन-तीन चार-चार खेपें करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की। बस, खेपों से काम था। मण्डी ले गये, वहाँ कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर में तो चैन की बंशी बजती थी। छटे छमासे कभी बहली में जोते जाते, तब खूब उछलते-कूदते और कोसों तक दौड़ते चले जाते थे। वहाँ बैलराज को रातिब, साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूमे के साथ खली, और यही नहीं। कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोंछता और सुहलाता था। कहाँ यह आठों पहर की खपन ! महीने भर में ही वह पिस-मा गया। इक्के का जुवा देखते ही उसका लोहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डियाँ निकल आई थीं, पर था वह पानीदार, मार की सहन न थी।

एक दिन चौथे खेप में साहूजी ने दूना बोझ लादा। दिन भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। उस पर साहूजी कोई फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़कर चला। वह कुछ दूर दौड़ा; उसने चाहा कि जरा दम ले लूँ पर साहूजी को जल्द घर पहुँचने की फिक्र थी। अतएव उन्होंने कई कोड़े बड़ी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार फिर जोर लगाया। पर अबका बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पड़ा और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहूजी ने बहुत पीटा, टांग पकड़ कर खींचा, नथुनों में लकड़ी ठूँस दी ! पर कहीं मृतक भी उठ सकता है ? तब साहूजी को कुछ शंका हुई। उन्होंने बैल को गार से देखा, खोलकर अलग किया और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुँचे। वे चीखे-चिल्लाये, पर देहात का रास्ता बच्चों की आँखों की तरह साँझ होते ही बन्द हो जाता है; कोई

नजर न आया। आस-पास कोई गाँव भी न था। मारे क्रोध के उन्होंने मरे हुए बैल पर और दुरें लगाये और कोसने लगे, अभागें ! तुम्हें मरना ही था तो घर पहुँच कर मरता। ससुरा बीच रास्ते में ही मर रहा ! अब गाड़ी कौन खींचे ? इस तरह साहूजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड़ और कई पोपे भी उन्होंने बेचे थे, दो ढाई सौ रुपये कमर में बँधे थे। इसके मिवाय गाड़ी पर कई बोरे नमक के थे। अतएव छोड़ कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गये। वहीं रतजगा करने की ठान ली। चिलम पो, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहूजी आधी रात तक नींद को बहलाते रहे, अपनी जान में तो बेजागते ही रहे पर पौ फटते ही जो नींद टूटी और कमर पर हाथ रक्खा तो थैली गायब ! घबरा कर इधर-उधर देखा तो कई कनस्तर तेल भी नदारद ! अफमोस में बेचारे सिर धुनने लगे और पछाड़ खाकर गिर पड़े, प्रातःकाल रोते-बिलखते घर पहुँचे। सहृआइन ने जब यह बुरी सुनावनी सुनी तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरी को गालियाँ देने लगी। निगोड़े ने ऐसा कुलच्छना बैल दिया कि जन्म भर की कमाई लुट गई।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गये। अलगू जब अपने बैल के दाम मांगते तब साहू और सहृआइन दोनों ही झल्लाये हुए कुत्तों की तरह चढ़ बैठते और अंड-बंड बकने लगते, वाह ! यहाँ तो सारे जन्म की कमाई लुट गई, सत्यानाश हो गया, इन्हें दामों को पड़ी है। मुर्दा बत दिया था उस पर दाम मांगने चले हैं। आँखों में धूल भोंक दी, सत्यानाशी बैल गले बांध दिया, हमें निरा पोंगा ही समझ लिया। हम भी बनिये के बच्चे हैं, ऐसे बुद्धू कहीं और होंगे। पहले जाकर किसी गड़हे में मुँह धो आओ तब दाम लेना। जो न मानता हो तो हमारा बैल खोल

ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। रुपया क्या लोगे ?

चौधरी के अशुभचिन्तकों की कमी न थी। ऐसे अवसरों पर वे भी एकत्र हो जाते और साहूजी के बर्गने की पुष्टि करते। इस तरह फटकारें सुन कर बेचारे चौधरी अपना-सा मुँह लेकर लौट आते, परन्तु डेढ़ सौ रुपयों से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वे भी गरम हो पड़े। साहूजी रिगड़ कर लाठी ढूँढ़ने घर चले गये। अब सहुआइन जी ने मैदान रिया। प्रश्नोत्तर होते हाते हाथापाई की नौबत आ पहुँची। सहुआइन ने घर में घुम कर किवाड़ बन्द कर लिये। शोर गुल सुन कर गांव के भले-मानुस जमा हो गये। उन्होंने दोनों को ममकाया। साहूजी को दिलासा देकर घर से निकाला। वे परामर्श देने लगे कि इस तरह मिर-फुड़ीबल से कुछ काम न चलेगा। पंचायत कर लो। जो कुछ तै हो जाय उसे स्वीकार कर लो। साहूजी राजी हो गये। अलगू ने भी हामी भर ली।

(७)

पंचायत की तैयारियाँ होने लगीं। दोनों पक्षों ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किये। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे फिर पंचायत बैठी। वही सन्ध्या का समय था। खेतों में कौचे पंचायत कर रहे थे। विवाद-ग्रस्त विषय यह था कि सटर की फलियों पर उनका स्वत्व है या नहीं, और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाय तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड़ की डालियों पर बैठी शुक-मंडली में यह प्रश्न छिड़ा हुआ था कि मनुष्य को उन्हें बेमुरोबत कहने का क्या अधिकार है जब उसे स्वयं अपने मित्रों को दगा देने में भी संकोच नहीं होता।

पंचायत बैठ गई तो रामधन मिश्र ने कहा, अब देगी क्यों ? पंचों का चुनाव हो जाना चाहिये । बोलो चौधरी, किस-किस को पंच बदते हो ।

अलगू ने दीनभाव से कहा, समभू साहू ही चुन लें ।

समभू खड़े हुए और कड़ककर बोले, मेरी ओर सं जुम्मन शेख ।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक-धक करने लगा मानो किसी ने अचानक थप्पड़ मार दिया हो । रामधन अलगू के मित्र थे । वे बात को ताड़ गये ! पूछा क्यों चौधरी, तुम्हें कोई उज्र तो नहीं ?

चौधरी ने निराश होकर कहा, नहीं; मुझे क्या उज्र होगा ?



अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे संकुचित व्यवहारों का सुधार होता है । जब हम राह भूल कर भटकने लगते हैं तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-दर्शक बन जाता है ।

पत्र-सम्पादक अपनी शान्त कुटी में बैठा दृष्टा कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मन्त्रिमंडल पर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर भी आते हैं जब वह स्वयं मन्त्रिमंडल में सम्मिलित होता है । मंडल के भवन में पग धरते ही उसकी लेखनी भमंज, कितनी विचारशील, कितनी न्याय-परायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है । नवयुवक युवावस्था में कितना उद्विग्न रहता है । माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते हैं । वे उसे कुल-कलंक समझते हैं; परन्तु थोड़े ही समय में परिवार का बोझ सिर पर पड़ते ही वही अव्यवस्थित-चित्त उन्मत्त युवक

कितना धैर्य-शील, कैसा शान्त-चित्त हो जाता है। यह भी उत्तर-दायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन में भी सरपंच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जुम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मैं इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हूँ। मेरे मुँह से इस समय जो कुछ निकलेगा वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी में मेरे मनोविकारों का कदापि समावेश न होना चाहिये। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नहीं।

पंचों ने दोनों पक्षों से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनों दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय में तो सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिये। परन्तु दो महाशय इस कारण रियायत करना चाहते थे कि बैल के मर जाने से समझू को हानि हुई है। इसके प्रति-कूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को कुछ दंड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओं के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त में जुम्मन ने फैसला सुनाया—अलगू चौधरी और समझू साहू! पंचों ने तुम्हारे मुआमले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दे; जिस समय उन्होंने बैल लिया था उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिया जाता तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे कठिन परिश्रम कराया गया और उसके दाने चारे का कोई अच्छा प्रबन्ध न किया गया।

रामधन मिश्र बोले, समझू ने बैल को जान-बूझकर मारा है। अतएव उनसे दण्ड लेना चाहिये।

जुम्मन बोले, यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नहीं।

भगडू साहू ने कहा, समझू के साथ कुछ रियायत होनी चाहिए ।

जुम्मन बोले, यह अलगू चौधरी की इच्छा पर है, रियायत करें तो उनकी भलमनसी है ।

अलगू चौधरी फूले न समाये । उठ खड़े हुए और जोर से बोले, पंच परमेश्वर को जय ।

चारों ओर से प्रतिध्वनि हुई—पंच परमेश्वर की जय !

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था—इसे कहते हैं न्याय ! यह मनुष्य का काम नहीं, पंच में परमेश्वर वास करते हैं । यह उन्हीं की महिमा है । पंच के सामने खोटे को कौन खरा कर सकता है ?

थोड़ी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आये और उनके गले लिपट कर बोले, भैया, जबसे तुमने मेरी पंचायत की, तब से मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था, पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई किसी का दोस्त होता है न दुश्मन । न्याय के सिवा उसे और कुछ नहीं सूझता । आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जवान से खुदा बोलता है ।

अलगू रोने लगे । इस पानी से दोनों के दिलों की मैल धु गई । मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई ।



विद्रोही

[स्व० पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक']

(१)

‘मान जाओ, तुम्हारे उपयुक्त यह कार्य न होगा ।’

‘चुप रहो—तुम क्या जानो ।’

‘इसमें वीरता नहीं है, अन्याय है ।’

“बहुत दिनों की धधकती हुई ज्वाला शान्त होगी ।” शक्ति-
सिंह ने एक लम्बी साँस फेंकते हुए, अपनी स्त्री की ओर देखा ।

.....

.....

‘कलंक लगेगा, अपराध होगा ।’

‘अपमान का बदला लूँगा । प्रताप के गर्व को मिट्टी में
मिला दूँगा । आज मैं विजयी होऊँगा ।’ बड़ी दृढ़ता से कहकर
शक्तिसिंह ने शिविर के द्वार पर से देखा । मुगल-सेना के चतुर
सिपाही अपने-अपने घोड़ों की परीक्षा ले रहे थे । धूल उड़ रही
थी । बड़े साहस से सब एक दूसरे में उत्साह भर रहे थे ।

‘निश्चय महाराणा की हार होगी । बाईस हजार राजपूतों
को दिन भर में मुगल-सेना काट कर सूखे डण्ठल की भांति
गिरा देगी ।’ साहस से शक्तिसिंह ने कहा ।

[७४]

‘भाई पर क्रोध करके देश-द्रोही बनोगे....’ कहते-कहते उस राजपूत-बाला की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं ।

शक्तिमिह अघराधी की नाईं विचार करने लगा । जलन का उन्माद उसकी नस-नस में दौड़ रहा था । प्रताप का प्राण लेकर ही छोड़ेगा, ऐसी प्रतिज्ञा थी । नादान दिल किसी तरह न मानेगा । उसे कौन समझा सकता था ?

रण भेगी बजी ।

कोताहल मचा । मुगल-सैनिक मैदान में एकत्रित होने लगे । पत्ता-पत्ता खड़खड़ा उठा ।

बिजली की भांति तलवारें चमक रही थीं । उस दिन सब में उत्साह था । युद्ध के लिए भुजायें फड़कने लगीं ।

शक्तिमिह ने घोड़े की लगाम पकड़ कर कहा—आज अंतिम निर्णय है, मरूँगा या मारकर हो लोढ़ूँगा !

शिविर के द्वार पर खड़ी मोहनी अपने भविष्य की कल्पना कर रही थी । उसने बड़ी गम्भीरता से कहा—‘ईश्वर सद्बुद्धि दे, यही प्रार्थना है ।’

(२)

एक महत्त्वपूर्ण अभिमान के विध्वंस करने की तैयारी थी । प्रकृति साँप उठी । घोड़ों और हाथियों के चीत्कार से आकाश थनथरा उठा । बरसाना हवा के थपेड़ों से जंगल के वृक्ष रण-नाद करते हुए झूम रहे थे । पशु-पक्षी भय व्रस्त होकर आश्रय ढूँढ़ने लगे । बड़ा विकट समय था ।

उस भयानक मैदान में राजपूत-सेना मोरचाबन्दी कर रही थी । हल्दीघाटी की ऊँची चोटियों पर भील लोग धनुष चढ़ाये उन्मत्त के समान खड़े थे ।

‘महाराणा की जय !’ शैलमाला से टकराती हुई ध्वनि मुगल-सेनाओं में घुस पड़ी । युद्ध आरम्भ हुआ । भैरवी रण-चण्डी ने प्रलय का राग छेड़ा । मनुष्य हिंस्र जन्तुओं की भांति अपने-अपने लक्ष्य पर टूट पड़े । सैनिकों के निडर घोड़े हवा में उड़ने लगे । तलवारें बजने लगीं । पर्वतों के शिखरों पर से बिषैले बाण मुगल-सेना पर बरसने लगे । सूखी हल्टीघाटी में रक्त की धार बहने लगी ।

महाराणा आगे बढ़े । शत्रु-सेना का व्यूह टूट कर तितर-बितर हो गया । दोनों ओर के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे ।

देखते-देखते लाशों के ढेर लग गये ।

भूरे बादलों को लेकर आँधी आई । सलीम के सैनिकों को बचने का अवकाश मिला । मुगलों की सेना में नया उत्साह भर गया । तोप के गोले उथल-पुथल करने लगे । धांय-धांय करती बन्दूक से निकली हुई गोलियाँ दौड़ रही थीं—ओह ! जीवन कितना सस्ता हो गया था !

महाराणा शत्रु-सेना में सिंह की भांति उन्मत्त होकर घूम रहे थे । जान की बाजी लगी थी । सब तरफ से घिरे थे । हमला पर हमला हो रहा था । प्राण संकट में पड़े थे । बचना कठिन था । सात बार घायल होने पर भी पैर उखड़े नहीं, मेवाड़ का सौभाग्य इतना दुर्बल नहीं था ।

मानसिंह की कुमन्त्रणा सिद्ध होने वाली थी । ऐसे आपत्ति काल में वह वीर सरदार सेना-सहित वहाँ कैसे आया ? आश्चर्य से महाराणा ने उसकी ओर देखा—वीर मन्नाजी ने उनके मस्तक से मेवाड़ के राजचिह्न धारण करने की बड़ी इच्छा हुई है ।—हँस कर मन्नाजी ने कहा । राणा ने उस उन्माद-पूर्ण हँसी में अटल धैर्य देखा ।

मुगलों की सेना में से शक्तिसिंह इस चातुरी को समझ गया। उसने देखा घायल प्रताप रण-क्षेत्र से जीते-जागते निकले चले जा रहे हैं और वीर मन्नाजी को प्रताप समझ कर मुगल उधर ही दूट पड़े हैं।

उसी समय दो मुगल-सरदारों के साथ महाराणा के पीछे-पीछे शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा छोड़ दिया।

(३)

खेल समाप्त हो रहा था। स्वतन्त्रता की बलिबेदी पर सन्नाटा छा गया था। जन्मभूमि के चरणों पर मर मिटने वाले वीरों ने अपने को उत्सर्ग कर दिया था। बाईस हजार राजपूत वीरों में से केवल आठ हजार बच गये थे।

विद्रोही शक्तिसिंह चुपचाप सोचता हुआ अपने घोड़े पर चढ़ा चला जा रहा था। मार्ग में शव कटे पड़े थे—कहीं भुजाएँ शरीर से अलग पड़ी थीं, कहीं धड़ कटा हुआ था, कहीं खून से लथपथ मस्तक भूमि पर गिरा हुआ था। कैसा परिवर्तन है ! दो घड़ियों में हँसते बोलते और लड़ते हुए जीवित पुतले कहाँ चले गये ? ऐमे निरीह जीवन पर इतना गर्व !

शक्तिसिंह की आँखें ग्लानि से झलझला पड़ी—

ये सब भी राजपूत थे। मेरी ही जाति के खून थे ! हाय रे मैं ! मेरा प्रतिशोध पूरा हुआ—क्या सच-मुच पूरा हुआ ? नहीं, यह प्रतिशोध नहीं था, अधम शक्त ! यह तेरे चिर-कलंक के लिए पैशाचिक आयोजन था। तू भूला, पागल ? तू प्रताप से बदला लेना चाहता था—उस प्रताप से जो अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जननी जन्म-भूमि की मर्यादा बचाने चला था ? वह जन्म-भूमि

जिसके अन्न-जल से तेरी नस भी फूली-फली है। अब भी माँ की मर्यादा का ध्यान कर ।”

सहसा धांय धांय गोलियों का शब्द हुआ। चौंकर शक्ति-सिंह ने देखा—दोनों मुगल-सरदार प्रताप का पीछा कर रहे थे। महाराणा का घाड़ा लस्त पस्त होकर झूमता हुआ गिर रहा है। अब भी समय है। शक्तिसिंह के हृदय में भाइ की ममता उमड़ पड़ी।

एक आवाज हुई—रुको !

दूसरे क्षण शक्तिसिंह की बटूक छूटी, पलक मारते दोनों मुगल-सरदार जहाँ के तहाँ ढेर हो गये। महाराणा ने क्रोध से आँख चढ़ाकर देखा, वे आँखें पूँज रही थीं—क्या भरे प्राण पाकर निहाल हो जाओगे ? इतने राजपूतों के खून से तुम्हारी हिसातृप्ति नहीं हुई ?

किन्तु यह क्या, शक्तिसिंह तो महाराणा के सामने नतमस्तक खड़ा था। वह बच्चों की तरह फूट फूटकर रो रहा था। शक्तिसिंह ने कहा—‘नाथ ! सेवक अज्ञान में भूल गया था, आज्ञा हो तो इन चरणों पर अपना शीश चढ़ाकर पद प्रक्षालन कर लूँ, प्रायश्चित्त कर लूँ।’

राणा ने अपनी दोनों बांहें फैला दी। दोनों के गले आपस में मिल गये, दोनों की आँखें स्नेह की वर्षा करने लगीं, दोनों के हृदय गद्गद् हो गये।

इस शुभ मुहूर्त पर पहाड़ी वृक्षों ने पुष्प वर्षा की, नदी की कल-कल धाराओं ने वन्दना की।

प्रताप ने उन डबडबाई हुई आँखों से ही देखा—उनका

चिर-सहचर प्यारा 'चेतक' दम तोड़ रहा है। सामने ही शक्तिसिंह का घोड़ा खड़ा था।

शक्तिसिंह ने कहा—'भैया अब आप विलम्ब न करें, घोड़ा तैयार है।'

राणा शक्तिसिंह के घोड़े पर सवार होकर, उस दुर्गम मार्ग को पार करते हुए निकल गये।

हार की जीत

[श्री सुदर्शन]

(१)

माँ को अपने बेटे, साहूकार को अपने देनदार और किसान को अपने लहलहाते खेत देखकर जो आनन्द आता है, वही आनन्द बाबा भारती को अपना घोड़ा देखकर आता था। भगवद्भजन से जो समय बचता, वह घोड़े के अर्पण हो जाता। यह घोड़ा बड़ा सुन्दर था, बड़ा बलवान्। इसके जोड़ का घोड़ा सारे इलाके में न था। बाबा भारती उसे सुलतान कहकर पुकारते, अपने हाथ से खरहरा करते, खुद दाना खिलाते और देख-देखकर प्रसन्न होते थे। ऐसी लगन, ऐसे प्यार, ऐसे स्नेह से कोई सच्चा प्रेमी अपने प्यारे को भी न चाहता होगा। उन्होंने अपना सब कुछ छोड़ दिया था, रुपया माल असबाब जमीन, यहाँ तक कि उन्हें नागरिक जीवन से भी घृणा थी। अब एक गाँव से बाहर छोटे से मन्दिर में रहते और भगवान का भजन करते थे। परन्तु सुलतान से बिछुड़ने की वेदना उनके लिए असह्य थी। मैं इसके बिना नहीं रह सकूँगा, उन्हें ऐसी भ्रान्ति सी हो गई थी। वह उसकी चाल पर लट्टू थे। कहते यह ऐसे चलता है जैसे मोर घन-घटा को देखकर नाच रहा हो। गाँवों के लोग इस प्रेम को देखकर चकित थे; कभी कभी कनखियों से इशारे भी करते थे परन्तु बाबा भारती को इसकी परवाह न

थी। जब तक संध्या समय सुलतान पर चढ़कर आठ दस मील का चक्कर नहीं लगा लेते; उन्हें चैन न आती।

खड़गसिंह उस इलाके का प्रसिद्ध डाकू था। लोग उसका नाम सुनकर काँपते थे। होते होते, सुलतान की कीर्ति उसके कानों तक भी पहुँची। उसका हृदय उसके देखने के लिये अधीर हो उठा। वह एक दिन दोपहर के समय बाबा भारती के पास पहुँचा और नमस्कार करके बैठ गया।

बाबा भारती ने पूछा—खड़गसिंह क्या हाल है ?

खड़गसिंह ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—आपकी दया है।

“कहो इधर कैसे आ गये ?”

“सुलतान की चाह खींच लाई।”

“विचित्र जानवर है। देखोगे तो प्रसन्न हो जाओगे।”

“मैंने भी प्रशंसा सुनी है।”

“उसकी चाल तुम्हारा मन ही मोह लेगी।”

“कहते हैं देखने में भी बड़ा सुन्दर है।”

“क्या कहना, जो उसे एक बार देख लेता है उसके हृदय पर उसकी छवि अंकित हो जाती है।”

“बहुत दिनों से अभिलाषा थी आज उपस्थित हो सका हूँ।”

बाबा और खड़गसिंह दोनों अस्तबल पहुँचे। बाबा ने घोड़ा दिखाया घमंड से। खड़गसिंह ने घोड़ा देखा आश्चर्य से। उसने सहस्रों घोड़े देखे थे, परन्तु ऐसा घोड़ा उसकी आँखों में कभी न गुजरा था। सोचने लगा, भाग्य की बात है। ऐसा घोड़ा खड़गसिंह के पास होना चाहिये था। इस साधु को ऐसी चीजों से क्या लाभ ? कुछ देर तक आश्चर्य से चुपचाप खड़ा रहा। इसके पश्चात् हृदय में हलचल होने लगी। बालकों की सी अ-भी-

रता से वह बोला—परन्तु बाबाजी इसकी चाल न देखी तो क्या देखां ?

[२]

बाबाजी भी मनुष्य थे। अपनी वस्तु की प्रशंसा दूसरे के मुख से सुनने के लिये उनका हृदय भी अधीर हो गया। घोड़े को खीलकर बाहर लाये, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगे। एकाएक उचक कर सवार हो गये। घोड़ा वायु-वेग से उड़ने लगा। उसकी चाल देखकर उसकी गति देख कर खड़गसिंह के हृदय पर साँप लोट गया। वह डाकू था और जो वस्तु उसे पसन्द आ जाय उस पर अपना अधिकार समझता था। उसके पास बाहु बल था और आदमी थे। जाते जाते उसने कहा—बाबाजी मैं यह घोड़ा आपके पास न रहने दूँगा।

बाबा भारती डर गये। अब उन्हें रात को नींद न आती थी। सारी रात अस्तबल की रखवाली में कटने लगी। प्रति क्षण खड़गसिंह का भय लगा रहता था। परन्तु कई मास बीत गये और वह नहीं आया। यहाँ तक कि बाबा भारती लापरवाह हो गये। और इस भय को स्वप्न की भय की नाईं मिथ्या समझने लगे।

सन्ध्या का समय था। बाबा भारती सुलतान की पीठ पर सवार घूमने जा रहे थे। इस समय उनकी आँखों में चमक थी; मुख पर प्रसन्नता। कभी घोड़े के शरीर को देखते, कभी रंग को और मन में फूले न समाते थे। सहसा एक ओर से आवाज आई—ओ बाबा ! इस कँगले की भी बात सुनते जाना।

आवाज में करुणा थी। बाबा ने घोड़े को थाम लिया। देखा एक अपाहिज वृद्ध की छाया में पड़ा कराह रहा है। बोले, तुम्हें क्या कष्ट है ?

अपाहिज ने हाथ जोड़ कर कहा—बाबा मैं दुखिया हूँ।

मुझ पर दया करो । रामवाला यहाँ से तीन मील दूर है; मुझे वहाँ जाना है । घोड़े पर चढ़ालो परमात्मा तुम्हारा भला करेगा ।

“वहाँ तुम्हारा कौन है ?”

“दुर्गादत्त वैद्य का नाम आपने सुना होगा । मैं उनका सौतेला भाई हूँ ।”

बाबा भारती ने घाड़े से उतरकर अपाहिज को घोड़े पर सवार किया और स्वयं उसकी लगाम पकड़कर धीरे धीरे चलने लगे ।

सहसा उन्हें एक भटका सा लगा और लगाम हाथ से छूट गई । उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उन्होंने देखा कि अपाहिज तन कर घोड़े की पीठ पर बैठा और घाड़े की दोड़ाये लिये जा रहा है । उनके मुँह से भय विस्मय और निराशा से मिली हुई चीख निकल गई । यह अपाहिज खड़गसिंह डाकू था ।

बाबा भारती कुछ देर तक चुन रहे और इनके परवान कुछ निश्चय करके पूरे बल से विल्ला कर बोले—जरा ठहर जाओ । खड़गसिंह ने यह आवाज सुनकर घोड़ा रोक लिया और उसकी गर्दन पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—बाबाजी यह घोड़ा अब न दूँगा ।

“परन्तु एक बात सुनते जाओ ।”

खड़गसिंह ठहर गया । बाबा भारती ने उसके निकट जाकर उसकी ओर ऐसी आँखां से देखा, जैसे बकरा कसाई का ओर देखता है, और कहा—यह घोड़ा तुम्हारा हो चुका । मैं तुमसे इसे वापिस करने के लिये न कहूँगा । खड़गसिंह केवल एक प्रार्थना करता हूँ, उसे अस्त्रोकार न करना; नहीं तो मेरा दिल टूट जायगा ।

“बाबा जी ! आज्ञा कीजिये । मैं आपका दास हूँ; केवल यह घोड़ा न दूँगा ।”

“अब घोड़े का नाम न लो, मैं तुमसे इसके विषय में कुछ न कहूंगा। मेरी प्रार्थना केवल यह है कि इस घटना को किसी के सामने प्रकट न करना।”

खड़गसिंह का मुँह आश्चर्य से खुला रह गया। उसका विचार था कि मुझे इस घोड़े को लेकर यहाँ से भागना पड़ेगा परन्तु बाबा भारती ने स्वयं उससे कहा कि इस घटना को किसी के सामने न प्रकट करना। इससे क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? खड़गसिंह ने बहुत सोचा, बहुत मिर मारा; परन्तु कुछ समझ न सका। हारकर उसने अपनी आँखें बाबा भारती के ऊपर गड़ा दीं। और पूछा—बाबा जी इसमें आपको क्या डर है?

सुनकर बाबा भारती ने उत्तर दिया—लोगों को यदि इस घटना का पता लग गया तो वे किसी गरीब पर विश्वास न करेंगे।

और यह कहते कहते उन्होंने सुलतान की ओर से इस तरह मुँह मोड़ लिया, जैसे उनका उससे कोई सम्बन्ध ही न था। बाबा भारती चले गये परन्तु उनके शब्द खड़गसिंह के कानों में उसी प्रकार गूँज रहे थे। सोचता था कैसे ऊँचे विचार हैं! कैसा पवित्रभाव है! उन्हें इस घोड़े से प्रेम था। इसे देखकर उनका मन फूल की नाईं खिल जाता था। कहते थे इसके बिना मैं रह न सकूँगा। इसकी रखवाली में कई रात सोये नहीं। भजन भक्ति न कर रखवाली करते रहे! परन्तु आज उनके मुख पर दुःख की रेखा तक न देख पड़ती थी। उन्हें यह ख्याल था कि कहीं लोग गरीबों पर विश्वास करना न छोड़ दें। उन्होंने अपनी निज की हानि को मनुष्य की हानि पर न्योझावर कर दिया। ऐसा मनुष्य, मनुष्य नहीं देवता है।

रात्रि के अन्धकार में खड़गसिंह बाबा भारती के मन्दिर में पहुँचा। चारों ओर सन्नाटा था आकाश पर तारे टिमटिमा रहे थे। थोड़ी दूर पर गाँवों के कुत्ते भूँकते थे। मन्दिर के अन्दर कोई शब्द न सुनाई देता था। खड़गसिंह सुलतान की बाग पकड़े हुए था। वह धीरे धीरे अस्तबल के फाटक पर पहुँचा। फाटक किसी वियोगी की आँखों की तरह चौपट खुला था। किसी समय वहाँ बाबा भारती स्वयं लाठी लेकर पहरा देते थे; परन्तु आज उन्हें किसी चोरी, किसी डाके का भय न था। हानि ने उन्हें हानि की तरफ से बेपरवा कर दिया था। खड़गसिंह ने आगे बढ़कर सुलतान को उसके स्थान पर बाँध दिया। और बाहर निकल कर सावधानी से फाटक बन्द कर दिया। इस समय उसके आँखों में नेकी के आँसू थे।

अन्धकार में रात्रि ने तीसरा पहर समाप्त किया, और चौथा पहर आरम्भ होते ही बाबा भारती ने अपने कुटिया से बाहर निकल ठंडे जल से स्नान किया। उसके पश्चात् इस प्रकार जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो उनके पाँव अस्तबल की ओर मुड़े परन्तु फाटक पर पहुँच कर उनको अपनी भूल प्रतीत हुई। साथ ही घोर निराशा ने पावों को मन-मन-भर का भारी बना दिया। वह वहीं रुक गये।

घोड़े ने स्वाभाविक मेधा से अपनी स्वामी के पाँवों की चाप को पहचान लिया और जोर से हिनहिनाया।

बाबा भारती दौड़ते हुए अन्दर घुमे और अपने घोड़े को गले से लिपटाकर इस प्रकार रोने लगे जैसे बिलुड़ा हुआ पिता चिरकाल के पश्चात् पुत्र से मिलकर रोता है। बराबर उसकी

पीठ पर हाथ फेरते, बराबर उसके मुँह पर थपकियाँ देते और कहते थे—अब कोई गरीबों की सहायता से मुँह न मोड़ेगा ।

थोड़ी देर के बाद जब वह अस्तबल के बाहर निकले तो उनके आँखों से आँसू बह रहे थे । ये आँसू उसी भूमि पर ठीक उसी जगह गिर रहे थे जहाँ बाहर निकलने के बाद खड़गसिंह खड़ा होकर रोया था ।

दोनों के आँ-खों का उसी भूमि की मिट्टी पर परस्पर मिलाप हो गया ।



उसकी माँ....

[श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उम्र']

दोपहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में, खड़ा-खड़ा, धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़े-बड़े अलमारियों में सजे पुस्तकालय की ओर निहार रहा था। किसी महान लेखक को कोई महान कृति उनमें से निकालकर देखने की बात सोच रहा था। मगर, पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे तक मुझे महान ही महान नज़र आये। कहीं गेंटे, कहीं रूसो, कहीं मेज़िनी, कहीं नित्शे, कहीं शेक्सपियर, कहीं टॉल्स्टॉय, कहीं ह्यूगो—मोपासाँ, कहीं डिकिन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर—उफ़ ! इधर से उधर तक एक से एक महान ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चन्द मिनट मनबहलाव करूँ यह निश्चय ही न हो सका। महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परोशान-सा हो गया।

इतने में मोटर का भों-भों सुनाई पड़ा। खिड़की से भाँका तो सुर्मई रंग की कोई 'फ़ियेट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा—शायद कोई भिन्न पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आने वाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलीस सुपरिन्टेन्डेन्ट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त यह कैसे आये ?

पुलीस-पति भीतर आये। मैंने, हाथ मिलाकर एक चक्कर

खाने वाली गद्दीदार कुर्सी पर उन्हें आसन दिया। वह व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले—

“इस अचानक आगमन के लिये आप मुझे क्षमा करें।”

“आज्ञा हो।”—मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली। डायरी से एक तस्वीर—
“देखिये इसे। ज़रा बताइये तो आप पहचानते हैं, इसको?”

“हाँ, पहचानता तो हूँ।” ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

“इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।”

“पूछिये।”

“इसका नाम क्या है?”

“लाल। मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।”

“कहाँ रहता है यह?”—सुपरिन्टेन्डेन्ट ने पुलिस की धूर्त-दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

“मेरे बँगले के ठीक सामने, एक दो-मंजिला कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।”

“बूढ़ी का नाम क्या है?”

“जानकी।”

“और कोई नहीं है, क्या इसके परिवार में? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?”

“सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहान्त हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा बराबर मेरी जमींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ-हजार रूपये जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खरचा-बरचा

चल रहा है। लड़का कालेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। भगर,—चूमा कीजिये, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं ?”

“यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिये आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।”

“अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है। हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ, आज्ञा...”

“एक बात और”, पुलिस-पति ने गम्भीरता से, धीरे से कहा—“मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ। आप इस परिवार से जरा सावधान और दूर रहें। फिलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।”

(२)

“लाल की माँ !” एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने सम्भाया—“तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपना करता है ? तुम उसे केवल प्यार-प्यार ही करती हो न ? हैं; भोगोगी।”

“क्या है बाबू ?” उसने कहा—“लाल क्या करता है ? मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।”

“बिना किये ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। मैं लाल की माँ, बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।”

“माँ ! माँ !!” पुकारता हुआ उसी समय, लाल भी आया। लम्बा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

“माँ !” उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा—“तू

यहाँ भाग आयी है। चल तो, मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं। उन्हें चटपट कुछ ललपान करा दो। फिर हम घूमने जायेंगे।”

“अरे !” जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगी, उसे देखकर—“तू आ गया, लाल ! चलती हूँ भैया। पर देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं। तू क्या पाजोपना करता है, बेटा ?”

“क्या है चाचाजी ?” उसने सविनय, सुमधुर स्वर से मुझ से पूछा—“मैंने क्या अपराध किया है ?”

“मैं तुमसे नाराज हूँ लाल !” मैंने गम्भीर स्वर में कहा।

“क्यों चाचाजी ?”

“तुम बहुत बुरा करते हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र करने वालों के साथी हो। हाँ, हाँ—तुम हो। देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया। यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली !”

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग ज़रा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह सँभला।

“आपने गलत सुना, चाचाजी। मैं किसी षड्यन्त्र में नहीं। हाँ, मेरे विचार स्वतन्त्र अवश्य हैं। मैं जरूरत-बेजरूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ, देश की दुरवस्था पर उबल उठता हूँ, इस पशु-हृदया परतन्त्रता पर।”

“तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यन्त्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बकबक क्यों ? इससे फायदा ? तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है—पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।”

उसने नम्रता से कहा—“चाचाजी, क्षमा कीजिये। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।”

“चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचाजी नहीं, तुम्हारा बहुत कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं। तुम्हारी बूढ़ी माँ, घूमने लगती हैं। भला मैं तुम्हें बे-हाथ होने दे सकता हूँ ? इस भरोसे न रहना।”

“इस पराधीनता के विवाद में, चाचाजी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राज-भक्त, मैं कट्टर राज-विद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं, कुछ कारणों से; मैं दूसरी को, दूसरे कारणों से। आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते—अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिये। मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।”

“तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं ? सुनूँ भी। जरा मैं भी जान लूँ कि अब के लड़के, कालेज को गर्दन तक पहुँचते-पहुँचते, कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। जरा मैं भी सुनूँ—बेटा !”

“मेरी कल्पना यह है कि, जो व्यक्ति, समाज या राष्ट्र किसी अन्य व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो—उसका सर्वनाश हो जाय।”

जानकी उठकर बाहर चली।—“अरे, तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाजे पर खड़े होंगे, लड़ तू, मैं जाती हूँ।” उसने मुझसे कहा—“समझा दो बाबू मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी।” उसने फिर लाल की ओर देखा—“चाचा जो कुछ कहें, मान जा बेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।”

वह बेचारी, कमर झुकाये उस साठ बरस की बय में घूँघट सँभाले, चली गयी। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गम्भीरता नहीं समझी।

“मेरी कल्पना यह है कि...” उत्तेजित स्वर से लाल ने कहा—“ऐसे दुष्ट, नाशक, व्यक्ति, समाज या राष्ट्र के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।”

“तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं; उनसे, जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो। चर्रर-मर्रर हो उठेंगे। नष्ट हो जायँगे।

“चाचाजी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सवाँरा गया है, वह बिगड़े हो गा। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्र भुजाओं की सखी हैं।”

“तो तुम क्या करना चाहते हो?”

“जो भी मुझसे हो सकेगा, करूँगा।”

“षड्यन्त्र...?”

“जरूरत पड़ी तो जरूर...”

“विद्रोह...?”

“हाँ, अवश्य!”

“हत्या...?”

“हाँ—हाँ—हाँ—।”

“बेटा, तुम्हारा माथा, न-जाने कौन किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!”

(३)

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ, एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने के लिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

‘क्यों लाल की माँ ! लाल के साथ किसके लड़के आते हैं, तुम्हारे घर में ?’

‘मैं क्या जानूँ बाबू’ उसने सरलता से कहा—‘मगर वे सभी मेरे लाल ही की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापवाह ! वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं, कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।’

मैंने एक ठसड़ी साँस ली—‘हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं ? कुछ समझ पाती हो ?’

‘बाबू, वे लाल के बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे ‘माँ’ कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है—मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।’

‘हूँ..’ मैंने फिर साँस ली।

‘एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डण्डा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, खाने में, छेड़खानी करने और हो-हो हा-हा कर हँसने में समूचे कॉलेज में फर्द है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी मेरे मुँह की ओर देखकर कहा— माँ ! तू तो ठीक भारत-माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका हिमालय उजला है, तेरे केश। हाँ, मैं नक़्शे से साबित करता हूँ—तू भारत-माता है। सर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी, बड़ी, रेखाएँ गंगा और यमुना। यह नभ किन्ध्याचल, दाढ़ी कन्याकुमारी तथा छोटी-बड़ी मुरियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे—बाएँ कंधे पर लहरा दूँ। वह बर्मा बन जायगा। बिना उसके भारत-माता का शृङ्गार शुद्ध न होगा।’

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्गद हो उठी “बाबू, ऐसा ठीठ लड़का। सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया। कहने लगा—देख, तेरा यह दाहिना कान कछ की खाड़ी है—बम्बई के आगे वाली; और यह बायाँ—बंगाल की खाड़ी। माँ, तू सीधा मुँह करके जरा खड़ी हो। मैं तेरी ठुड्डी के नीचे, उससे दो अंगुल के फासले पर, हाथ जोड़कर घुटनों पर बैठता हूँ। दाढ़ी तेरी कन्या कुमारी—हा हा हा हा !—और मेरे जुड़े, जरा तिरछे, हाथ सिलोन—लंका !—हा हा हा हा !!—बोल, भारत माता की जय ।”

“सब लड़के ठहाका लगाकर हँसने लगे। वह घुटने टेककर, हाथ जोड़कर मेरे पावों के पास बैठ गया। मैं हक्की-बक्की-मी हँसनेवालों का मुँह निहारने लगी। बाबू ने सभी बच्चे मेरे ‘लाल’ है, सभी मुझे ‘माँ’—गाकर—कहते हैं।”

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बनकर छा गई। मैंने पूछा—“लाल की माँ ! और भी वे कुछ बातें करते हैं ? लड़ने की, भगड़ने की, गोला गोली या बन्दूक की ?”

“अरे बाबू” उसने मुस्कराकर कहा—“वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं, जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी कभी तो पागलों-सी बातें करते हैं। महीना भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। वे जब बैठक से बैठकर गलचौर करने लगते हैं, तब कभीकभी उनका पागलपन सुन्नने के लोभ से, मैं दर-वाजे से सट और छिपकर खड़ी हो जाती हूँ।”

“न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे योही गप हाँकते थे। मगर उस दिन

वे यही बक रहे थे। कहते थे—पुलीसवाले केवल सन्देह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलीस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना, अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है—धीरे-धीरे घुलाना, मिटाना है।”

एक ने उत्तेजित भाव से, कहा—“अजी, ये परदेशी कौन लगते हैं हमारे; जो हमें बरबस, राज-भक्त बनाये रखने के लिये, हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाये, अड़े और खड़े है ? उफ ! इस देश के लोगों की हिये की आँखें मुँद गई हैं, तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी, आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिये अपनी अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतन्त्रवाद का !”

दूसरे ने कहा—“लोग ज्ञानी न हो सकें, इसलिये इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें इसलिये अपमानजनक और मनुष्यता-नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर, पले हुए पशुओं को शराब से, कबाब से, मोटा-ताजा रखती है, यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है, यह लूटक-शासन-प्रणाली। नाश हो इस प्रणाली का ! इस प्रणाली की तस्वीर सरकार का !”

“तीसरा, वही बँगड़, बोला—सब से बुरी बात यह है, जो सरकार रोब से—‘सत्तावनी’-रोब से—धाक से, धाँधलो से, धुआँ से, हम पर शासन करती है। यह, आँखें खोलते ही, कुचल-कुचलकर, हमें दबू, कायर, हतवीर्य, बनाती है। और किस लिये ज़रा सोचो तो मुट्ठी भर मनुष्यों को अरुण, वरुण

और कुबेर बनाये रखने के लिये, मुट्ठी-भर मनचले सारे संसार की मनुष्यता की मिट्टी पलीत करें, परमात्मा-प्रदत्त स्वाधीनता का संहार करें—छिः नाश हो ऐसे मनचलों का !”

“ऐसे ही अण्ट-सण्ट ये बानूनी बका करते हैं बाबू। जभी चार छाकरे जुड़े, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिजाज भी, उसी-सा, अलहड़-बिलहड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-त्यों बकबक में बढ़ते भी जा रहे हैं।”

“यह बुरा है, लाल की माँ !” मैंने गहरी साँस ली।

(४)

जमीन्दारी के कुछ जरूरी काम से, चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बैंगले में घुसने के पूर्व लाल के दर-वाजे पर जो नजर पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा-सा नजर आया। जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास-मुख खड़ी हो गयी।

“तुमने सुना ?”

“नहीं तो, कौन-सी बात ?”

“लाल की माँ पर भयानक विपत्ति दूट पड़ी है।” मैं कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी, विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा—“क्या हुआ ? ज़रा साफ-साफ बताओ।”

“वही हुआ, जिसका तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पलटन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घण्टे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिये गये हैं। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सब के घर से भयानक भयानक चीजें निकली हैं।”

“लाल के यहाँ...?”

“उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत से कारतूस और पत्र बाये गये हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यन्त्र, सरकारी राज्य चलाने की चेष्टा, आदि अपराध लगाये गये हैं।”

“हूँ” मैंने ठण्डी साँस ली—“मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि यह लौंडा धोखा देगा। अब वह बूढ़ों बेबारी मरी। वह कहाँ है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?”

जानकी मेरे पास कहाँ आई। बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया—पराठे बना रहा हूँ, हलुवा तरकारी अभी बनाना है। नहीं तो वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरफा न जायेंगे। जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेंगे, मगर मेरे जीजे जी यह नहीं होने का।”

“वह पागल है, भोगेगी।” मैं दुःख में टूटकर एक चारपाई पर भहरा पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद, प्रायः एक वर्ष तक वह मुकदमा चला। कोई भी अदालत के कागज़ उलटकर देख सकता है। सी० आई० डी० ने—और उसके मुख्य सरकारी वकील ने—उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोप किये। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ स्थापित की थी, उनके खर्चे और प्रचार के लिये डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छःपा मारकर, शस्त्र एकत्र किये थे, पलटन में उन्होंने बराबत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस के दारोगा को मारा था; और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को! ये सभी बातें, सरकार की ओर से प्रमाणित की गईं।

उधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था? प्रायः कोई नहीं।

सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी; तो, 'नहीं' का भाई। हाँ, उनवी पैरवी में सबसे अधिक परीशान वह बूढ़ी रहा करती। वह सुबह शाम उन बच्चों को—लोटा, थाली, जेवर आदि बेंच-बेंचकर भोजन पहुँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती कहती—

“सब भूठ है। न जाने वहाँ से, पुलीसवालों ने ऐसी-ऐसी चीजें हमारे घरों में पैदा करदी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं—हाँ, मैं भगवान् का चरण छूकर कह सकती हूँ। तुम जेल में जाकर देख आओ वकील बाबू! भला वे फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं ?”

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई, आँखें निस्तेज; मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, हाय-हाय करना, उसने बन्द न किया। कभी कभी सरकारी नौकर, पुलीस या बाडर भुँमलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते। तब वह खड़ी हो जाती छड़ी के सहारे कमर सीधी कर—“अरे, अरे! तुम कैसे जवान हो, कैसे आदमी हो। मैं तो उन भोले बच्चों के लिए दौड़ती-मरती हूँ और तुम मुझे धक्के दे रहे हो! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, भैया ?”

उसको अन्त तक यही विश्वास रहा कि पुलीस की चाल-बाजी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जायगा, तब वे बच्चे जरूर बे-दारा छूट जायेंगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आदेंगे। हा-हा-हो-हो करेंगे। उसे ‘माँ’ कहकर पुकारेंगे।

मगर, उस दिन उसकी कमर टूट गयी, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी, लाल को, उस बंगड़ लटैत को, तथा दो और

लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सजाएँ दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते, बाहर आये। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उस पर पड़ी—

“माँ!” वह मुस्कराया—“अरे, हमें तो हलुवा खिला-खिलाकर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है ऐसा कि, फाँसी की रस्ती टूट जाय और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू सुखकर काँटा हो गई है। क्यों पगली—तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?”

“माँ!” उसके लाल ने कहा—“तू भी जल्दी आना, जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी देर का रास्ता है माँ! एक साँस में पहुँचेंगे। वहाँ, हम स्वतंत्रता से मिलेंगे। तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कंधे पर उठा कर इधर से उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनन्द है!”

“आवेगी न माँ?”—बंगड़ ने पूछा।

“आवेगी न माँ?”—लाल ने पूछा।

“आवेगी न माँ?”—फाँसी दण्ड-प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह बकर-बकर उनका मुँह ताकती रही—“तुम कहाँ जाओगे पगलो?”

जब से लाल और उमके साथी पकड़े गये, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने में डरता था। उसे रास्ते में देखकर जान-पहचानी बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर; मगर मैं भी

बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत में डालता, विद्रोही को माँ से सम्बन्ध रखकर ?

उस दिन, ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय-वाले कमरे में गया। वहीं, किसी महान् लेखक की कोई-महान् कृति क्षण भर देखने की लालच से मैंने मेजिनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोली। उसके पहले ही पन्ने पर पैसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, लाल का वह हस्ताक्षर था। मुझे याद पड़ गई। तीन बरस पूर्व, उस पुस्तक को मुझसे माँगकर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ, उस लड़के के लिये। उसके बफ़ादार पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उस पाजी के सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था, उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर देखते ही, लगी। मेरे मुँह से एक गम्भीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलीस सुपरिंटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरो, सुहावनी, अमानवी आँखें मेरी, आप सुखी तो जग सुखी आँखों में वैसे ही चमक गईं जैसे ऊजड़ गांव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगाही चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ—जिनमें लाल की तस्वीर थी—मानों मेरी गर्दन चाँपने लगे। मैं मेज पर से 'इरेज़र' (रबर) उठाकर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

इसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

“अरे ?” मैं अपने को रोक न सका—“लाल की माँ ! तुम तो बिल्कुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानों कुछ देख ही नहीं रही हो। यह, हाथ में क्या है ?”

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा उस पर जेल को मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया था, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा। वह उसकी अन्तिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा रूखा कर, उसे जोर से पढ़ दिया।

“माँ,

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सबेरे मैं, बाल अरुण के किरण-रथ पर चढ़कर, उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अन्त समय तुमसे मिल सकता था; मगर इससे क्या फायदा ? मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मान्तर की जवनी हो, रहोगी ! मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ ? माँ ! जब तक पवन सौंल लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है ?

दिवाकर थमा रहेगा; अरुण रथ लिये जमा रहेगा; मैं, बंगड़, वह सभी तेरे इन्तजार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे—हाँ, माँ, ! तेरा—‘लाल’।”

काँपते हाथ से, पढ़ने के बाद, पत्र को मैंने उस भयानक लिफाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे की करुणा से कँपाने लगी। मगर वह जानकी ज्यों की त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों

अन्धकार था, कुछ नहीं दिखाई पड़ा। कान लगाने पर कुछ सुनाई न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज़ और अवश्य सुनायी पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई थी, जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः उसी की बात सोचने लगा। वह उस नालायक के लिये क्या नहीं करती थी। खिलौना की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी, पर आह रे छोकरे!...

“माँ िँ िँ िँ िँ िँ !”

फिर वही आवाज़ ! ज़रूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोये। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ अभागिनी, वैसे ही पुकार रही है, जैसे वह पाजी गाकर मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला; ऊषा पीली हुई, लाल हुई, अरुण रथ लेकर वहाँ—क्षितिज के उस छोर पर—आकर, पवित्र मन से, खड़ी हो गई। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

“माँ िँ िँ िँ िँ िँ !”

मानो, लाल पुकार रहा था, मानो, जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक् धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकारकर कहा—

“देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है ?”

जब वह लौटकर आया तब मैं—एक बार पुनः मेज़ और मेज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रख लिये—उसी—उसी उद्देश्य से। उसने घबड़ाए स्वर में कहा—

“हुजूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वह दरवाजे पर पाँच पसारे हाथ में कोई चिट्ठी लिये, मुँह खोले, मगी बैठी हैं। हाँ, सरकार ! विश्वास भानिये, वह मर गई हैं। सौंस बन्द है—अँखें खुलीं।”

तीन बच्चे

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

मेरे बच्चों में से प्रत्येक ने अपने लिए एक-एक फूलों का बगीचा लगाया था। बगीचा क्या फूलों की छोटी-छोटी क्यारियाँ थीं। एक दिन सवेरे हम लोगों ने देखा कि उन क्यारियों में फूल खिल आये हैं।

बच्चे ही तो ठहरे ! हर एक को अपनी-अपनी क्यारी के फूल अधिक सुन्दर जान पड़े—और इसी बात पर उन लोगों में लड़ाई छिड़ गई। हर एक का कहना था कि उसकी क्यारी के फूल सब से अधिक सुन्दर हैं।

बात बढ़ते-बढ़ते फूलों से हटकर दूसरे ही क्षेत्र में जा पहुँची। एक हिटलर बना, तो दूसरा मुसोलिनी और तीसरा स्टालिन, और मुझे इन तीनों की मा बनने का सौभाग्य, एक साथ ही, प्राप्त हो गया।

संग्राम में विषैले वाक्यों का प्रयोग होते सुनकर, मुझे चौंके का काम छोड़, बगीचे की ओर जाना पड़ा। मुझे देखते ही सब एक साथ, अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर, न्याय की दुहाई देने लगे। न्याय का कार्य उतना आसान न था, जितना एक अदालत के जज का होता है। जज के पथ-प्रदर्शन के लिए कानून होते हैं और नज़ीरें भी। चाहे लकीर की फकीरी में अन्याय ही क्यों न हो जाय, पर उसका मार्ग स्पष्ट रहता है। मेरे सामने न

कानून था, न नज़ीर—फिर भी मुझे यह लड़ाई समाप्त करनी थी—और न्याय-पूर्वक !

मैं सोच ही रही थी कि निर्णय के लिए जूरी क्यों न नियत कर दिये जायें कि इतने में ही बच्चों के काका जी आते दिखे। चीखना-चिल्लाना तो दूर उन्हें किसी का पंचम स्वर के ऊपर बोलना तक पसन्द नहीं है। बच्चों को लड़ते देखकर बोले—“अच्छा, यह लड़ाई किस लिए है ? यदि तुम लोग लड़े-भिड़े तो मैं तुम्हारी माँ को सत्याग्रह न करने दूंगा।”

मेरे हिटलर-मुमोलिनी शान्त हो गये। माँ के बिना जिन्हें स्कूल जाने तक में कष्ट होता है; माँ के बिना जिनका एक भी काम नहीं हो सकता; वही मेरे बच्चे जो से चाहते थे कि मैं सत्याग्रह करूँ और जेल जाऊँ।

अब मैंने उनसे पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं है, तो सब एक स्वर से बोल उठे—“नहीं माँ, सभी क्यारियों के फूल बहुत सुन्दर हैं। तुम सत्याग्रह करो और जल्दी जेल जाओ।”

हम सब भीतर जाने को उठ ही रहे थे कि बाहर से गाने की आवाज़ आई—गाना कोरस में था और स्वर था बच्चों का—सा—

“भगवान् दया करना इतनी,
मोरी नैया को पार लगा देना।”

और अब तो हम सभी दरवाजे की ओर दौड़ पड़े। इसी समय दूसरा पद सुनाई पड़ा—

“मैं तो डूबत हूँ मझधार पड़ी,
मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।”

बाहर आकर देखा—तीन बच्चे थे—दो लड़कियाँ और एक लड़का। बड़ी लड़की होगी दस बरस की; छोटी आठ और सात

के बीच में थी और लड़का—वह बड़ी की गोद में ही था—कोई पाँच साल का। हम लोगों को देखते ही उन्होंने गाना बन्द कर दिया। लड़के को गोद से उतारकर, बड़ा ने ज़मीन से माथा टेककर, हमें प्रणाम किया। उसको देखा-देखो छोटी लड़की और लड़के ने भी ज़मीन से माथा टेका और तीनों ने अपने चोथड़ों में छिपे हुए पेट को दिखा कर यह बतलाया कि वे भूखे हैं। बड़ी के हाथ में एक भोली थी और छोटी के हाथ में एक टोन का डिब्बा। उन्होंने एक बार भोलो को ओर देखा जो बिलकुल खाली जान पड़ती थी; फिर हमारी आँखों याचना की दृष्टि से देखने लगे। मैंने उनसे कहा—“तुम गाती तो बहुत अच्छा हो, और भी कोई गाने जानती हो ?”

बड़ी के बोलने के पहले ही छोटी बोल उठी—“हमें भजन भो आते हैं; बड़ी मालकिन !” और आदेश पाये बिना ही वे दोनों गाने लगीं—

“कमर कस ले रे बिलोचो, तेरे संग चलूँगी।

तेरे संग चलूँगी रे तेरे साथ चलूँगी।

कमर कस ले। ;

मेरे साथ चलेगी तो तेरी अम्मा लड़ेगी.....।”

हम लोगों को हँसी अब दबाये न दबी। अम्मा के लड़ने की बात सुनते ही वह फूट पड़ी। वे सभी शर्माकर चुप हो गये। उनकी दृष्टि से ऐसा जान पड़ता था कि वे किसी अज्ञात भूल से दुखी हो गये हैं। मैंने हँसी रोककर, आश्वासन के स्वर में कहा—“बहुत अच्छा गाया।” मेरी बात सुनते ही वे फिर बैठकर लगे ज़मीन से माथा टेकने। मैंने पूछा—“तुम्हें क्या चाहिए—पका हुआ खाना या कच्चा ?”

बड़ी ने फिर ज़मीन से माथा टेककर कहा—“कुछ भो खाने

को चाहिए, बड़ी मालकिन ! कल से कुछ नहीं खाया है ।” मैंने बच्चों में कहा कि इन्हें दो-दो पूरियाँ दे दो,—और मैं अन्दर चली गई ।

बच्चों ने इन्हें कितनी-कितनी पूरियाँ दीं, यह तो मैं नहीं कह सकती पर जब चौके में जाकर देखा तो न डिब्बे में एक भी पूरी थी और न कटोरे में तरकारी ।

(२)

दूसरे दिन हम लोग सुबह की चाय पीकर उठने ही वाले थे कि वे बाल-गवैये फिर आ पहुँचे । हमें, कोमल स्वर में, सुनाई पड़ा—

“सौँवरिया हमें भूल गयो, सखि, सौँवरिया ।

बिंदरावन की कुछ गलिन में बाज रही है बाँसुरिया ।

हमें भूल गयो, सखि, सौँवरिया ॥”

मैंने अपने बच्चों से कहा—“कल तुमने उन्हें खूब पूरियाँ खिलाई थीं न ! अब वे सब फिर आगये । जैसे उनके लिए यहाँ रोज़ ही पूरियाँ धरी हैं !”

“धरी तो हैं, मा !” एक साथ ही बच्चों के मुँह से निकला और सबके हाथ एक साथ ही पूरी के डिब्बे की ओर बढ़े ।

मैंने उन्हें रोकते हुए कहा—“ठहरो, ठहरो ! रोज़-रोज़ उन्हें पूरियाँ खिलाओगे तो वे दुर्वाजा ही न छोड़ेंगे । उन्हें चावल या आटा देकर जाने को कह दो ।”

एक बच्चा बोल उठा—“बिचारे छोटे-छोटे बच्चे; न जाने उनकी मा भी है या नहीं । वे भला कहाँ पकायेंगे ?”

दूसरा ताने के स्वर में बोला—“इससे तो यही अच्छा है कि उन्हें कुछ भी न दिया जाय ।”

सबसे छोटा बोला—“तुम भी मा होकर ऐसा क्यों कहती हो, मा ! उन बिचारों को भी भूख लगी होगी । हमारे हिस्से की ही दे दो ।”

लड़की सबमें समझदार थी । उसकी दृष्टि यही चाह रही थी कि मा का इशारा भर मिले और पूरियों का डिब्बा ले जाकर वह उन बच्चों को खिला दे ।

मैंने उदासीनता से कहा—“पूरियाँ ही दे दो, पर शाम को फिर तुम्हारे लिए नाश्ता बनाना पड़ेगा ।”

“मा, हम शाम को नाश्ता नहीं करेंगे”, एक स्वर में एक साथ बच्चों ने कहा और हाथ में पूरियाँ लिए हुए दरवाजे की ओर दौड़ पड़े ।

चौके का काम निपटाकर, मैं भी बाहर गई । देखा वे तीनों बड़े मजे में पूरियाँ खा रहे थे और मेरे बच्चे भी बड़े उत्साह से उन्हें परस रहे थे । जब वे खा-पीकर उठे तो मैंने कहा—“देखो भाई ! तुमने पूरियाँ तो खा लीं । अब बिना गाना सुनाये न जाने पाओगे ।”

उन्होंने कृतज्ञता-पूर्वक माथा जमीन पर टेककर गाना शुरू किया—

“अब न रहूँगी कान्हा, तोरी नगरिया ।

हाट-बाट मोरी गैल न छोड़े,

पनघट पर मोरी फोरे गगरिया ।

अब न रहूँगी॥”

गाना गा चुकने के बाद उन्होंने फिर जमीन से माथा टेका, जैसे हमें आशीर्वाद देकर जाने के लिए उद्यत हों, पर मैंने उन्हें रोककर पूछा—“क्या तुम तीनों भाई-बहन हो ?”

“हाँ, बड़ी मालकिन,”—बड़ी लड़की ने कहा ।

मैंने पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है ?” अपना नाम उसने ‘ईंठी’ छोटी बहन का नाम ‘सींठी’ और भाई का नाम ‘प्रेमा’ बतलाया ।

‘ईंठी, सींठी, प्रेमा’ उनका नाम दुहराते हुए मैंने पूछा—
‘क्या तुम्हारे मा-बाप कोई नहीं है ? तुम कल भी अकेले आये थे, आज भी ।’

छोटी लड़की बड़ी तत्परता से बोल उठी—“मा भी है और बाप भी है, बड़ी मालकिन;—हमारे सब कोई हैं ।”

“कहाँ हैं तुम्हारे मा-बाप जो तुम्हें इस तरह अकेले फिरने को भेज देते हैं ?”

“बाप अमरावती में है और मा·····”

“अमरावती में तुम्हारा बाप क्या करता है ?” मेरा छोटा लड़का बीच में ही पूछ बैठा ।

“जेल में है, छोटे बाबू !” बड़ी लड़की ने उत्तर दिया ।

“जेल में है ?” मैंने कुछ अनास्था से पूछा—“जेल क्यों हुई उसे ?”

लड़की बोली—“वह दारू जो पीता था ! और दारू पीकर वह चुप भी नहीं रहता था । दगा करता था, मा को मारता था, गाली बकता था और इसीलिए तो···(लड़की आँख उठाकर मेरी ओर देखते हुए बोली) बड़ी मालकिन, पुलिस वालों ने उसे पकड़ा; और सब लोग कहते हैं पुलिस वालों ने ठीक किया ।”

‘और तुम्हारी मा, वह अब कहाँ है ?’ मैंने पूछा ।

लड़की बोली—“मा ?···वह भी तो जेल में है, और उसी के साथ हमारा सबसे छोटा भाई भी है । वह तो (अपने भाई की ओर उँगली से दिखाकर लड़की ने कहा) प्रेमा से भी छोटा है । वह रोता नहीं । इससे अच्छा है ।”

“बेचारे बच्चे !” मेरे मुँह से निकल पड़ा—“मा-बाप दोनों जेल में और ये अन्याय सड़क पर भीख माँगते फिरते हैं।”

मैंने फिर पूछा—“तुम्हारी मा ने क्या किया था ?”

लड़की बोली—“हमारी मा ने पुलिस वाले को मारा था—जिसने हमारे बाप को पकड़ा था न, उसी को, और फिर वे मा को भी पकड़ ले गये। बड़े बुरे होते हैं पुलिस वाले—हमारी मा को भी ले गये। मा के बिना हमको भी बुरा लगता है पर यह प्रेमा तो रात-दिन रोता ही रहता है।”

मैंने लड़के की ओर देखा—बेचारा छोटा-सा बच्चा; मुश्किल से पाँच बरस का; फटे चीथड़े में लपटा हुआ; सिर में महीनों तेल का नाम नहीं; रुखे बिखरे बाल; न जाने कब से नहाया नहीं था; शरीर पर एक मैल की तह-सी जम गई थी; गालों पर आँसुओं के निशान बने हुए थे; आँसुओं के साथ-साथ उस स्थान की मैल जो धुल गई थी। मुझे उस बच्चे पर बड़ी दया आई। मैंने उस लड़की से पूछा—“तुम लोग अपनी मा से जेल में मिलने नहीं जाती ?”

छोटी बोल उठी—“जाती हैं बड़ी मालकिन !” बड़ी ने कहा—“तीन महीने में एक बार मुलाकात होती है। एक बार मुलाकात करने गये थे; दूसरी बार तीन महीने के बाद जब हम लोग गये तब मालूम हुआ कि मा को यहाँ के जेल में भेज दिया है। तो हम लोग सब काली मा के साथ यहाँ चले आये। काली मा भी भीख मांगती है।”

“तुम लोग रात को कहाँ रहती हो ? सोती कहाँ हो ? तुम्हें डर नहीं लगता ?” मैंने पूछा।

बड़ी लड़की ने कहा—“जेल के पास एक नाला है। हम लोग रात को वहीं पुल के नीचे मा की बातें करते-करते सो जाते

हैं। कभी-कभी काली मा भी आ जाती है, पर वह रोज नहीं आती।”

“मा की सजा कितने दिन की है ?”

“दो साल की” बड़ी लड़की ने कहा, “हम रोज जेल को देखते हैं। हमारी मा वहीं तो है। जब मा छूटेगी हम उसको साथ लेकर देश जायेंगे।” एक प्रकार की खुशी से बालिका पुलकित हो उठी। अपनी मा को लेकर जैसे वह सचमुच देश जाने की तैयारी कर रही हो।

मैंने लड़की से पूछा—“तुम लोग नहाती हो कभी ?”

संकोच से बड़ी लड़की चुपारही। छोटी ने कहा—“हमारे पास दूसरे कपड़े नहीं हैं न।”

मेरा इशारा पाते ही मेरे बच्चों ने अपने पुराने कपड़ों में से उनके पहनने के लिये बहुत से कपड़े ला दिये।

मेरा चित्त उदास हो गया। मैं कमरे में बैठकर कुछ सोचने लगी और वे बच्चे कपड़े लेकर खुशी-खुशी चले गये।

कुछ दूर से गाने की आवाज आई—

“मैं तो डूबत हूँ मझार पड़ी,
मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।”

बहुत से सुन्दर-सुन्दर पद पढ़े, लिखे और सुने थे। पर स्वयं और आत्मा का ऐसा संयोग तो कहीं नहीं देखा था, शब्द और वस्तु का ऐसा मेल तो कभी चित्रित नहीं हुआ।

मैं उन्हें बुलाने के लिये झपटी, परन्तु तब तक वे दूर निकल गये थे।

(३)

इस घटना के दूसरे ही दिन मैं भी युद्ध-विरोधी सत्याग्रह करके, जेल की अतिथि बनी, मेरे और बच्चों ने तो हँसी-खुशी

से बिदाई दी पर सबसे छोटी-मिन्नु बहुत छोटी होने के कारण मुझे छोड़कर घर में न रह सकती थी। अतएव वह मेरे साथ ही गई।

उस समय जबलपुर जेल में कोई अन्य राज-बन्दिनी न थी अकेली होने के कारण मैं अस्पताल में रखा गई। मेरी सेवा के लिये दो माधारण कैदी स्त्रियाँ रात में मेरे साथ रहती थीं। दिन में सब लोग एक साथ रह सकते थे।

कैदखाने की दुनिया भी एक विचित्र ही वस्तु है।

यह कौन है ? चोर !

यह ? यह चरम बेचतो थी और इमने अपने नवजात शिशु की हत्या करने की चेष्टा की थी, पर भा होकर यह हत्या कर सकती थी—इसका मुझे विश्वास न हुआ।

और यह लड़की ? यह तो अभी बहुत कम उमर है ! इसने क्या किया था ? इमने अपने पति और मास को जहर दिया था !! मैं काँप उठी। विधाता ! क्या यह सचमुच स्त्रियाँ हैं ? क्या तुम्हारी ही आज्ञा से इनका भी सृजन हुआ था ?

फिन्तु, इसी समय जैसे कोई अन्दर से बोल उठा—‘यह तसवीर का एक ही पहलू है—इमको दूसरी ओर भी देखो ! सम्भव है ये निर्दोष हों; सम्भव है ये देवियाँ हों।’

मेरी सेवा के लिये जो दो औरतें तैनात थीं, उनमें से एक तो अल्हड़ सी थी, जिसे कुछ काम-काज न आता था पर दूसरी समझदार थी। वह प्रौढ़ थी। उसकी गोद में भी एक बच्चा था। वह बड़ी फिक्र से सब काम करती थी। वह अधिकतर चुप रहती थी, जैसे सदा मन ही मन कुछ साचा करती हो। मिन्नु को तो उमने इस प्रकार हिला लिया था जैसे वह उसी की बच्ची हो। उसका खुद का बच्चा पाँव पाँव चलता और मिन्नु चलते उसकी गाँदों पर। वह पानी भरती तो मिन्नु उसके साथ होते;

दाल दलती तो मिनू उसके साथ और बरतन मलती तो मिनू भी उसके साथ छोटी-छोटी कटोरियाँ और गिलास मलती दीख पड़ती। अन्त को बात इतनी बढ़ी कि वह मिनू को अपनी पीठ से बाँधकर झाड़ू देने लगी। उसका नाम था—लखिया।

लखिया और मिनू के इस स्नेह-सम्बन्ध से लखिया के बच्चे को जो अभाव ज्ञात हुआ उसकी पूर्ति में उसे मिनू के फल और मिठाइयाँ दे देकर करने लगी। वह प्रायः मेरे ही पास खेला करता। फल और मिठाइयाँ खाने से इस बच्चे को और पानी भगने, बरतन मलने तथा बगोचा सींचने से मिनू को थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य का लाभ होता दिखाई पड़ा।

मैं बहुत सीचती थी कि यह लखिया कौन है ? वह जेल क्यों आई ? एक दिन अचानक मैंने मेट्रन से पूछा, जिसका उत्तर मिला—“ओह, ये बड़ा खतरनाक औरत है। इसने पुलिस को मारा है—पुलिस को। पर हमने उसका दिमारा ठीक कर दिया है। आपको कोई तकलीफ़ तो नहीं देता ?”

अचानक मुझे उन बच्चों का खयाल आगया। उनकी माँ भी तो पुलिस को मारने के कारण जेल भेजी गई थी और उसके साथ भी तो एक छोटा बच्चा था। पूछना मैंने कई बार चाहा पर लखिया की गम्भीर और उदास मुद्रा देखकर, हिम्मत मेरी एक बार भी न हुई।

एक दिन रात को खूब पानी बरसा। खूब दहाड़-दहाड़ कर बादल गरजे और कड़क-कड़ककर बिजली चमकी। मुझे अपने बच्चों की याद आगई : छोटा लड़का डरा होगा। दूसरे पलंग पर सोने पर भी वह बादलों के गरजते ही मेरे पास आकर सो जाता था। इसके साथ मुझे उन तीनों बच्चों की भी याद आई जो बिचारे पुल के नीचे सोते थे। कहीं आगे सोचने की मेरी हिम्मत न पड़ी। मैंने प्रार्थना की “हे ईश्वर सब माताओं के

बच्चों को अच्छी तरह रख और सबके बाद मेरे बच्चों की भी रक्षा कर।”

(४)

जेल में मेरे पास अखबार आया करते थे। जेल की सभी कैदी स्त्रियाँ लड़ाई की खबरें सुनने को उत्सुक रहा करती थीं। उन्हें विश्वास था कि एक दिन ऐसा होगा जब जेल के फाटक टूट जायेंगे और अवधि से पहले ही उनका छुटकारा हो जायगा। मैं भी उन्हें झोरप को लड़ाई और भारत के सत्याग्रह की खबरें सुना दिया करती थी।

उस दिन शाम को अखबार आया और पढ़ते-पढ़ते मेरा जी धक से रह गया ! जबलपुर की ही खबर थी —

‘कल रात एकाएक पानी बरसा और खूब बरसा। जेल के पास के नाले में तीन शरीर बचचे बह गये। उन तीनों की लार्श मिली हैं। बहुत खोज करने पर भी उनकी शिनाखत नहीं हो सकी। दो लड़कियाँ हैं और एक लड़का। ऐसा सुना गया है कि बे गाना गाकर भेख माँगा करते थे।’

मेरे घर पर आकर गानेवाले उन तीन बच्चों का चित्र हठात मेरी आँखों के सामने खिच गया और ऐसा जान पड़ा जैसे दूर से कोई गा रहा है—

‘मैं तो डूबत हूँ मझधार पड़ी,
मोरी बैयों पकड़ के उठा लेना।’

अखबार रखकर मैं आँसू रोकने को प्रयत्न करने लगी। अचानक मेरे मुँह से निकल गया—‘बेवारे बच्चे !’

लखिया पास ही बैठी मेरे लिये चाय तैयार कर रही थी। उसने पूछा—“क्या खबर है, बाई साहब ! अरे, उदास क्यों हो गई ? बच्चों की याद आ रहा है ?”

मैं उसे कुछ भी उत्तर न दे सकी। वह फिर बोली—“थोड़े

ही दिन तो और हैं, बाई साहब ! कट ही जायँगे। फिर बच्चे अपने बाप के साथ तो हैं; फिर क्यों करती हो।”

उसकी ओर देखने की मेरी हिम्मत नहीं थी पर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उसने बात खतम होते न होते एक गहरी साँस ली और आँखों के आँसू पोंछ लिये। मैंने अपनी सब शक्ति संचित करके उससे पूछा—“लखिया तेरे और बच्चे हैं, या यही एक है ?”

आँखों में आँसू और ओंठों पर एक क्षीण मुस्कराहट के साथ वह बोली—“एक ही क्यों बाई साहब, (मेरी बच्ची की ओर इशारा करके) यह बिटिया भी तो है।”

मैंने कहा—“ये तो जेल के भीतर हैं। जेल के बाहर कितने हैं ?”

लखिया एक गहरी साँस लेकर बोली—“जेल के बाहर बाई साहब ! वो तो भगवान के हैं—अपने कैसे कहूँ ?”

और इसके बाद वह अस्त्रवार की खबर पूछती ही रह गई पर मैं उसे कुछ भी न बतला सकी।



कोटर कुटीर

[श्री सियारामशरण गुप्त]

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। मानो किसी और भयंकर काण्ड की आशंका से सांस सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक पुत्र ने कहा—“पिताजी !”

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्वती के वर्तमान रुखेयन की तरह ही वह स्वर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—“क्या है बेटा ?”

“है और क्या ? प्यास के मारे चोंच तक प्राण आगये हैं।”

“बेटा अधीर न हो। समय सदा एक सा नहीं रहता।”

“तो यही तो मैं भी कहता हूँ—समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिये थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह बानरी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिये। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।”

“घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अन्तर्धन।”

“आप कहते हैं—कोई अनर्थ नहीं हुआ, मैं कहता हूँ, प्यास की इस यन्त्रणा से बढ़ कर और अनर्थ क्या होगा। जहाँ से भी होगा मैं जल ग्रहण करूँगा ही।”

चातक सिहर कर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने उन अश्रव्य वचनों और कानों के बीच में, कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी चाही ! थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला—
“बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती माता वी गोद हरी-भरी होती है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।

लाड़ले लड़के ने कहा—“व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कहीं चिन्ह तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के और निकट रहनेवाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है ?”

“बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिये थोड़ी-सी जुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है।”

“पिताजी, मैं थोड़ी-सी जुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नहीं चाहता कि जुधा ही जुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दो-बस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमी

क्यों इस तरह का कष्ट सहें । आप चाहे मुझे रखें या छोड़ें, मैं यह संकट न मानूँगा ।”

चातक ने देखा मामला बेढब हुआ चाहता है । यह इस तरह न मानेगा । कहा—“यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?”

चातक-पुत्र चुप । उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था । वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पीऊँगा । परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था ।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा—‘कमजोरी यहाँ है ।’ वह जानता था कि कमजोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली सोढ़ी है । बोला—“चुप कैसे रह गये ? बताओ तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?”

हिचकिचाकर, अपनी बात स्वयं ही खण्ड-खण्ड करते हुए, लड़के ने कहा—जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा ।

पिता ने कहा—पड़ोस में वह पोखरी है । अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं । तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो, है हिम्मत ?

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आगई । उसमें कितनी गंदगी है । पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिर-गिर कर उसमें सड़ती रहती हैं । कीड़े कुलमुलाते हुए उसमें साफ दिखाई देते रहते हैं । लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं या गन्दे करने; कई बार सोचने पर भी वह समझ नहीं सका था । एक बार एक आदमी को अंगुली से पानी पीते देख, उसने पिता

से कहा था—‘देखो पिताजी, ये कैसे घृणित जीव हैं।’ अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था; परन्तु उसके मन में उमी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पिऊँगा।

चातक बोला—“बेटा, अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ कगोड़ों की प्यास है और वृष्टि के साथ कगोड़ों की वृष्टि। तुमसे अकेले वृष्टि होते कैसे बनेगा ?”

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करनेवाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—
“मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।”

चातक ने कहा—“गंगा जी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर है। तू नहीं मानता, तो जा। परन्तु यदि तूने और कहीं एक बूंद भी ली, तो हमें मुंह न दिखाना।

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर्र से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। युगना छप्पर नीचे झुककर, घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध दरारों के ‘दत्तक’ से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए, वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता और सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी बिनौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृत्त की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी, अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंजिन तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके, मानो आधे-आधे शरीर का बटवारा कर लिया। छी पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एकमात्र पुत्र, गोकुल ही अवाशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन सन्ध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाटा था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट से नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी, तौ भी उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सबेर थोड़े से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े से चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था—“शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा।” परन्तु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनन्द की स्निग्ध शीतल छाया में शीतकाल के दिन की तरह,

मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में, निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति, अक्राट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परन्तु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके, उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसको प्रतीक्षा सफल हुई। किवाड़ खुलने की आवाज सुनकर वह चौंका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा—“कौन गोकुल ! बेटा आज बड़ी देर लगाई ?”

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—“क्या हुआ, बेटा, क्या हुआ ?”

“आज मजूरी नहीं मिली ! अब कैसे चलेगा ?”

‘एँ, मजूरी नहीं मिली ! फिर इतनी देर क्यों हुई ?”

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया—

सबेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गये। सोचा, आज भगवान् ही मालिक है। काम पर पहुँचकर उसने देखा—ओवरसियर साहब आज कुछ ज्यादा खूफा हैं ! इंजीनियर साहब काम देखने आये थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गये थे। अन्याय का वह बोझ उन्होंने दिन भर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ़ इनकार कर दिया—‘आज दाम नहीं दिये जायेंगे’—उस अदालत के फैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मजदूर अपने-अपने घर लौट गये।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया । पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपये-पैसे के रखने का बटुआ है । उठाकर देखा तो काफ़ी चञ्चल-दार था । वह सोच में पड़ गया—इसे खोलकर देखना चाहिए या नहीं । न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा । कौतूहल-निवृत्ति करने के लिए उसने टटोला । टटोलने पर मालूम हुआ—रुपये हैं और बहुत कम भी नहीं । थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा—इसका क्या करूँ ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले । वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है ? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है, तब उसकी क्या दशा होगी ? रुपये-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था । उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके, वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो ।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी । उस पर, कान में मोती पिरोई सोने की वाला पहने हुए, एक महतो बैठे थे । सम्भव है यह बटुआ उन्हीं का हो । और किसी के पास इतने रुपये होना आसान भी नहीं है । यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोककर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जला कर तमाखू भरी होगी । एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे । उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा ।

लगभग आधे घण्टे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास

पहुँच गया । गोकुल ने हाँफते-हाँफते पूछा—महतो, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया ?

महतो ने चौंककर गाड़ी में इधर-उधर देखा । साथ ही जेब पर हाथ रक्खा तो पाषाण की तरह निस्पन्द हो गये । लोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई । वह बटुआ दिखाकर, उसने फट से प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारा है ?

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व-सा हो गया । मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझाकर, घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो ! महतो ने कहा—भगवान् तुम्हें सुखी रखे भैया । इसे कहाँ पाया ?

रास्ते में पड़ा था । इसमें कितने रुपये हैं ?

महतो ने हिसाब लगाकर बताया—बयालीस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक काराज, एक चाँदी का छल्ला—

गोकुल ने बटुआ खोलकर रुपये गिने । सब ठीक निकले । बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आये । बोले—इतनी बड़ी रकम पाकर भी, जिसे उसका लोभ न हो; भैया, मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा । यदि किसी और को यह बटुआ मिलता, तो मेरा मरण हो जाता । मेरा रोम-रोम असीष दे रहा है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखें । यह कहकर महतो ने, बटुए से निकालकर, गोकुल को दो रुपये देने चाहे । उसने सिर हिलाकर कहा—मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है । मुफ्त के ये रुपये मैं न लूँगा ।

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये । । गोकुल थोड़ी ही देर में उस अन्धकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया ।

सब वृत्तान्त सुनाकर गोकुल अपराधी की भांति खड़ा होकर बोला—“बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँगा लाता, तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आँखों से भर-भर आँसू भरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भरकर, उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या, जीवन भर की क्षुधा शान्त कर सकती है। धन-सम्पत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे। माना एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला—“अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूमरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया कि यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ, सदा ऐसा ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डालना।”

ऊपर चातक पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी भर-

भर आँसू भरने लगे । बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका । पौ फटते ही बड़े सबेरे वह फिर उड़ा, परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला; उसी विशा को जिधर से वह आया था । उस की उड़ान पहले से तेज हो गई थी, फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये । दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी मड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका ।



शरणागत

[श्री वृन्दावनलाल वर्मा]

रज्जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी; और गाँठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था। बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिये इसने भड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी स्त्री को बुझार हो आया था, रकम पास में थी और बैलगाड़ी किराये पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ ? जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चोँदी की बालियाँ डाले थी और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीद चुका था।

अपने जानकारों से उसने रात भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और छिपे लुके बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरे फैलती, इसलिये सबने इनकार कर दिया।

गाँव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको किसान जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में, ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गाँववाले 'गढ़ी' के आदर व्यंजक शब्द में पुकारा करते। और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बंधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वरग्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुका पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—“दाऊजू एक बिनती है।”

ठाकुर ने बिना एक रत्ती भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—
“क्या ?”

रज्जब बोला—“मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को जोर से बुखार आगया है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसको क्या हालत हो जायगी, इसलिये रात भर के लिये कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।”

“कौन लोग हो ?” ठाकुर ने प्रश्न किया।

“हूँ तो कमाई।” रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—
“जानता है यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तुने ?”

रज्जब ने आशा भरे स्वर में कहा—“यह राजा का घर है, इसी लिये शरण में आया हूँ।”

तुरन्त ठाकुर की आँखों से कठोरता गायब हो गई। जरा नरम स्वर में बोला—“किसी ने तुम्हको बसेरा नहीं दिया ?”

“नहीं महाराज”, रज्जब ने उत्तर दिया—“बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।” और वह दरवाजे के बाहर ही एक काने से चिपटकर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई, गठरी-सो बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—“तुम अपनी चिलम लिये हो ?”

“हाँ, सरकार।” रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—“तब भीतर आ जाओ और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।”

जब दोनों भीतर आगये, ठाकुर ने पूछा—“तुम कब यहाँ से उठकर चले जाओगे ?” जवाब मिला—“अधेरे में ही महाराज ! खाने के लिये रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिये पकाने की जरूरत न पड़ेगी।”

“तुम्हारा नाम ?”

“रज्जब।”

(२)

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—“कहाँ से आ रहे हो ?”

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

“वहाँ किसलिये गये थे ?”

“अपने रोजगार के लिये।”

“काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।”

“क्या करूँ, पेट के लिये करना ही पड़ता है ! परमात्मा ने जिसके लिये जो रोज़गार मुर्कर किया है, वही उसको करना पड़ता है ।”

“क्या नफ़ा हुआ ?” प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा संकोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर ।

रज्जब ने जवाब दिया—“महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है—यों ही ।”

ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की ।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—“बड़े भोर उठकर चला जाऊँगा । तब तक घर के लोगों की तबीअत भी अच्छी हो जायगी ।”

इसके बाद दिन भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये । काफी रात गये कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया । फटी-सी रजाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया ।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा—“दाऊजू आज तो खाली हाथ लौटे हैं । कल संध्या का सगुन बैठा है ।”

ठाकुर ने कहा—“आज ज़रूरत थी । ख़ैर, कल देखा जायगा । क्या कोई उपाय किया था ?”

“हाँ”, आगन्तुक बोला—“एक क़साई रुपये की मोट बाँधे इसी ओर आया है । परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुँचे । वह खिसक गया । कल देखेंगे । ज़रा जल्दी ।”

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—“क़साई का पैसा न छुयेंगे ।”

“क्यों ?”

“बुगी कमाई है ।”

“उसके रूपों पर कसाई थोड़े ही लिखा है ।”

“परन्तु उसक व्यवसाय से वह रूपया दूषित हो गया है ।”

“रूपया तो दूसरों का ही है । कसाई के हाथ में आने से रूपया कपाई का नहीं हुआ ।”

“मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है ।”

“हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे ।”

ज्यादा बहस नहीं हुई । ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया ।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था और उसकी पत्नी भी ।

ठाकुर भी सो गया ।

(३)

सबेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका । उसकी पत्नी का बुखार तो हलका हो गया था, परन्तु शरीर भर में पीड़ा थी और वह एक कदम भी नहीं चल सकती थी ।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया । रज्जब से बोला—“मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किये हैं ! गाँव भर थोड़ी देर में तुम लोगों का मेरो पोर में टिका हुआ देखकर, तरह-तरह की बकवास करेगा । तुम बाहर जाओ, इसी समय ।”

रज्जब ने बहुत विनती की । परन्तु ठाकुर न माना । यद्यपि गाँव भर उसके दबदबे को मानता था, तथापि अव्यक्त लोकमत का दबदबा उसके भी मन पर था । इसलिये रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठा और हिन्दू-मात्र को मन ही मन कोसने लगा ।

उसे आशा थी कि पहर-आव पहर में उसकी पत्नी की तबो-अत इतनी स्थिर हो जायगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी,

परन्तु ऐसा न हुआ। तब उसने एक गाड़ी किराये पर कर लेने का निणय किया।

मुश्किल से एक चमार काफ़ी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिये राज़ी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थी; इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न थी। चलने में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिये यात्रा को स्थगित कर दिया, जिस समय तक उस बेचारो की कम से कम कँपकँपी बन्द न हो जाय।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद उसकी कँपकँपी तो बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज़ हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—“दिन भर तो यहीं लगा दिया! अब जल्दी चलने को कहते हो।”

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिये कहा।

वह बोला—“इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।”

रज्जब ने दौँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—“भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य, मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।”

कसाई की दया पर व्याख्यान देते सुनकर, गाड़ीवान को हँसी आगई।

उसको टस से मस न होता देखकर, रज्जब ने और पैसे दिये। तब उसने गाड़ी हाँकी।

पाँच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का बोझ कम कर देना पड़ा है और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसे व्यर्थ ही देने पड़े थे। उसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

“गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।”

“बहुत दूर। वहीं ठहरेंगे।”

“किसके यहाँ?”

“किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेंगे।”

“कल का फिर पैसा माँग उठना।”

“कैसे माँग उठूँगा? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूंगा?”

“जैसे आज गाँव में हठ करके मांगा था। बेटा! ललितपुर होता, तो बतला देता।”

“क्या बतला देते? क्या सेंटमेंत गाड़ी में बैठना चाहते थे?”

“क्यों बे, क्या रुपये देकर भी सेंटमेंत का बैठना कहता है?

जानता है, मेरा नाम रज्जब है ! अगर बीच में गड़बड़ करेगा तो यहीं छुरी से काटकर कहीं फेंक दूंगा और गाड़ी लेकर ललित-पुर चल दूंगा ।”

रज्जब क्रोध प्रकट करना नहीं चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली भाँति प्रकट हो गया ।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा । अन्धेरा हो गया था । चारों ओर सुनसान था । आसपास झाड़ी खड़ी थी । ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला, और अब निकला ! रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी वांप गई । ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों में उसकी ठंडी छुरी छू रही हो ।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा । उसने सोचा—गांव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा और हल्ला-गुल्ला करके गांववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब छुड़ाऊँगा । रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूंगा, परन्तु और आगे न जाऊँगा । कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

(५)

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गये । रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिए जरा अचढ़कर गाड़ीवान से बोला—“क्यों बे बदमाश, सो गया क्या ?”

अधिक कड़क के साथ, सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से, किसी के कठोर कण्ठ से निकला—“खबरदार, जो आगे बढ़ा !”

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पांच आदमी बड़े-बड़े लट्ट बाँधकर, न जाने कहाँ से आ गये हैं । उनमें तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरी पर एक लट्ट पटका और दो दायें-बायें आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये ।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—
“मालिक मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।

“यह कौन है ?” एक ने गरजकर पूछा।

गाड़ीवान की घिघी बंध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से संभालते हुए, बहुत ही वितन्न स्वर में कहा—“मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी ओरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।”

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—“महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये पर गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही हैं।”

“और यह कौन है ? बतला !” उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—“ललितपुर का एक कसाई।”

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठी वाले के मुँह से निकला—“तुम कसाई हो ? सच बतलाओ !”

“हाँ, महाराज”, रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—“मैं बहुत गरीब हूँ। हाथ जोड़ता हूँ; मुझको मत सताओ। मेरी ओरत बहुत बीमार है।”

ओरत जोर से कराही।

लाठी वाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा—“इसका नाम रज्जब है। छोड़ो ! चलो यहाँ से।”

उसने न माना। बोला—“इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजू, यदि ऐसे न माने तो ! असाई-कसाई हम कुछ नहीं मानते।”

“छोड़ना ही पड़ेगा”, उसने कहा—“इस पर हाथ नहीं पसारेंगे, और न पैसा छुयेंगे।

दूसरा बोला—“क्या कसाई होने से ? दाऊजी, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं—मैं देखता हूँ।” और, तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी पर चढ़ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया पैसा निकालकर दे-देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने ज़रा तीव्र स्वर में कहा—“नीचे उतर आओ ! उससे मत बोलो ! उसकी औरत बीमार है।”

“हो, मेरी बला से”, गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—“मैं कसाइयों की दवा हूँ।” और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा—“खबरदार, जो उसे छुआ ! नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ ! वह मेरी शरण आया था !”

गाड़ी पर चढ़ा लठैत झूठ-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—“सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो” फिर गाड़ीवान से बोला—“जा रे, हांक ले जा गाड़ी ! ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना ! नहीं तो अपनी खैर मत समझियो ! और तुम दोनों में से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा कहीं की, तो भूसी की आग में जलाकर खाक कर दूंगा।”

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने लुब्ध स्वर में कहा—

“दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।”

दाऊजू ने कहा—“न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुज़रता हूँ। परन्तु बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करता; इस बात की गांठ बाँध लेना।”



सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया

[श्री चतुरसेन शास्त्री]

(१)

रात बहुत अँधेरी थी। रास्ता पहाड़ी और ऊपड़-खाबड़ था। आकाश पर बदली छाई हुई थी, और अभी कुछ देर पूर्व जोर की वर्षा हो चुकी थी। जब जोर की हवा से वृक्ष और बड़ी-बड़ी घास साँय-साँय करती थी, तब जंगल का सन्नाटा और भी भयानक मालूम होता था।

उस समय उस जंगल में दो घुड़सवार बड़े चले जा रहे थे दोनों के घोड़े खूब मजबूत थे, पर वे पसीने से लतपत थे। घोड़े पग-पग पर ठोकरें खाते थे, पर उन्हें ऐसे बौहड़ रास्तों में, ऐसे संकट के समय, अपने स्वामी को ले जाने का अभ्यास था। सवार भी असाधारण धैर्यवान् और वीर पुरुष थे। वे चुपचाप चल रहे थे। घोड़े की टाँपें और उनकी प्रगति से कमर में लटकती हुई उनकी तलवारों और बछ्छों को खरखराहट उस सन्नाटे के आलम में एक भय-पूर्ण रव उत्पन्न करती थी।

हठात घोड़े ने एक ठोकर खाई, और एक मंद आर्तनाद अग्रगामी सवार के कान में पड़ा ! उसने घोड़े की बाग खींचते हुए कहा—“धौधू जी ?” “महाराज ।” पीछेवाला सवार क्षण-भर में अग्रगामी सवार के सन्निकट आ गया, और उसने बिजली की भाँति अपनी तलवार खींच ली। अग्रगामी सवार का घोड़ा

खड़ा हो गया था। उसने भी तलवार नंगी करके कहा—“देखो, क्या है ? घोड़े ने ठोकर खाई है। यह आर्तनाद कैसा है ?”

“धाँधू जी घोड़े स उतर पड़े, उन्होंने झुककर देखा, और कहा—“महाराज, एक मनुष्य है।” “क्या घायल है ?” “खून में लतपत प्रतीत होता है।” “जीवित है ?”

इसी समय पड़े हुए व्यक्ति ने फिर आर्तनाद किया। महाराज उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये ही घोड़े से कूद पड़े। उन्होंने धाँधू जी को प्रकाश करने का आदेश दिया, और स्वयं मागे में पड़े व्यक्ति के सिंहाने घुटनों के बल बैठ गये। उन्होंने उसका सिर गोद में रख दिया, नाड़ी देखी, हृदय का स्पंदन देखा, और कहा—“जीवित है, पर मालूम होता है, बहुत घाव खाये हैं, रक्त बहुत निकल गया है।”

धाँधू जी ने तब तक चक्रमक पत्थर से अबरक की बनी चोर लालटेन जला ली थी। वह उसे घायल के मुख के पास लाये। देखकर कहा—“अरे, बड़ा अल्पवयस्क बालक है !” “परन्तु अंग में घाव हैं, मालूम होता है, वीरतापूर्वक युद्ध किया है।”

मुमूर्षु ने प्रकाश और मनुष्य-मूर्ति को देखा और जल का संकेत किया। महाराज ने स्वयं उसके मुख में जल डाला। जल पीकर उसने आँखें खोलीं, और क्षीण स्वर में कहा—“आप चाहे जो भी हों, यह प्राण और शरीर आपके हुए।” उसके होठों पर मंद हास्य की रेखा आई।

महाराज ने कहा—“धाँधू जी, इसका रक्त बन्द होना चाहिये। देखिए, सिर से अब तक रक्त बह रहा है और पार्श्व का यह घाव भी भयानक है।” इसके बाद दोनों व्यक्तियों ने उसके सभी घाव बाँधकर उसे स्वस्थ किया। इसके बाद वे सलाह करने लगे—“अब इसे कहाँ ले जाया जाय ? समय कम है, और हमारा गंतव्य पथ लम्बा।”

युवक ने स्वयं कहा—“यदि मुझे घोड़े पर बैठा दिया जाय, तो मैं मजे से चल सकूँगा।” “क्या निकट कोई गाँव है?” “है, पर एक कोस के लगभग है।” “वहाँ कोई मित्र है?” “हैं। वहाँ मेरी बहन का घर था, बहनोई हैं।” युवक का स्वर कंपित था। महाराज ने कहा—“बहन नहीं है?”

“नहीं।” युवक का कंठ अवरुद्ध हुआ। उसके नेत्रों से झरझर आँसू बहने लगे। वह फिर बोला—“जैसे आज तीसरे पहर बिदा कराके घर ले आ रहा था। बहनोई उस बाग तक साथ आये थे। उन्हें लौटते देर न हुई, ज्यों ही हम लोग इस खेड़े के निकट पहुँचे हैं, कोई पाँच सौ यवन सैनिकों ने धावा बोल दिया। मेरे साथ केवल आठ आदमी थे। शायद सभी मारे गये। मैंने यथासाध्य विरोध किया, पर कुछ कर न सका, वे बहन का डोला ले आये। मैंने मूर्च्छित होने से प्रथम अच्छी तरह देखा, पर मैं तलवार पकड़ ही न सका, फिर मेरी तलवार टूट भी गई थी।” युवक उद्वेग से मानो मूर्च्छित हो गया।

महाराज ने होंठ चबाया। एक बार उन्होंने अपने सिंह के समान नेत्रों से उस चोर-लालटेन के प्रकाश में चारों ओर देखा—टूटी तलवार, चर्खा, दो-चार लाशें और रक्त की धार। उन्होंने युवक से कहा—“तुम्हारे घर पर कौन है?” “वृद्धा विधवा माता।” “गाँव कौन है?” “मोगावा।” “दूर है?” “आठ कोस होगा।” “तुम्हारा नाम?” “तानाजी।” “घोड़े पर चढ़ सकोगे?” “जी।”

महाराज और धाँधू जी ने युवक को घोड़े पर लादा। धाँधू जी उसके पीछे बैठे और महाराज भी अपने घोड़े पर सवार हुए। इस बार ये यात्री अपना पथ छोड़कर युवक के आदेशानुसार गाँव की ओर बढ़े, पगडंडी सकरी और बहुत खराब थी।

जगह-जगह पानी भर रहा था, पर जानवर सधे हुए और बहुत असील थे। धीरे-धीरे गाँव निकट आ गया। युवक के बताये मकान के द्वार पर जाकर धौंधू जी ने थपकी दी। एक युवक ने आकर द्वार खोला। धौंधू जी ने उसकी सहायता से घायल तानाजी को उतार कर घर में पहुँचाया। संचोप में दुर्घटना का हाल सुनकर गृह-पति युवक मर्माहत हुआ। धौंधू जी ने अवकाश न देखकर कहा—“तुम लोग परसों इसी समय हमारे यहाँ आने की प्रतीक्षा करना और घटना का कहीं भी जिक्र न करना।” तानाजी ने व्यग्र होकर कहा—“महोदय, आपका परिचय? मैं किसके प्रति कृतज्ञ होऊँ?” “छत्रपति हिन्दू-कुल-सूर्य महाराजाधिराज शिवाजी के प्रति।”

धौंधू जी ने अब विलम्ब न किया, वह लपककर घोड़े पर चढ़े, और दोनों असाधारण सवार अन्धकार में विलीन हो गये।

[२]

पूना से पच्छिम ओर, विन्ध्याचल शृंग के एक दुरूह शिखर पर, एक अति प्राचीन, शायद बौद्ध-कालीन गुफा है। उसके निकट घने वृक्षों का झुरमुट है। एक अमृत के समान मीठे पानी का झरना भी है। इसी गुफा के सम्मुख, कोई एक तीर के अन्तर पर, एक विस्तृत मैदान है। उसे खास तौर पर साफ और समतल बनाया गया है।

वहाँ एक बलिष्ठ युवक बर्छी फेंकने का अभ्यास कर रहा था। युवक गौर वर्ण, सुन्दर, ठिगना और लोढ़े के समान ठोस था। उसने अपने सुगठित हाथों में बर्छी छँटाया और तोलकर एक वृक्ष को लक्ष्य करके फेंका। बर्छी वृक्ष को चीरता हुआ पार

निकल गया। गम्भीर स्वर में किसी ने कहा—“ठीक नहीं हुआ, तुम्हारा लक्ष्य चलित हो गया।”

युवक ने माथे का पसीना पोंछकर पीछे फिरकर देखा। एक जटिल संन्यासी तीव्र दृष्टि से युवक को ताक रहे थे। युवक ने सिर झुका लिया। संन्यासी अप्रसर हुए। उन्होंने बर्छा को क्षणभर तोला और विद्युत-वेग से फेंक दिया। बर्छा स्थूल वृक्ष को चीरता हुआ क्षण भर ही में धरती में घुस गया। उत्साहित होकर युवक ने एक ही झटके में बर्छा उखाड़ा और महावेग से फेंका। इस बार बर्छा वृक्ष को चीरकर धरती में घुस गया। संन्यासी ने मंद स्मित स्वर में कहा—“हाँ, यह कुछ हुआ। वत्स, मैं तो वृद्ध हुआ, युवक-सा पौरुष कहाँ? हाँ, तुम अभी स्फूर्ति और उत्पन्न करो।”

युवक ने गुरु के चरणों में प्रणाम किया और दोनों ने तलवारें निकाल लीं। प्रथम मन्द, फिर वेग और उसके बाद प्रचंड गति से दोनों गुरु शिष्य तलवारें चलाते लगे, मानो बिजलियाँ टकरा रही हों। दोनों महाप्राण पुरुष पसीने से लतपत हो गये। श्वास चढ़ गया, परन्तु उनका युद्ध-वेग कम न हुआ। दोनों ही चीते की भाँति उछल-उछलकर वार कर रहे थे, तलवारें झनझना रही थीं। गुरु ने ललकार कर कहा—“बेटे, लो, एक सच्चा वार तो करो। देखें, शत्रु को तुम किस भाँति हनन करोगे।” युवक ने आवेश में आकर संन्यासी के मोढ़े पर एक भरपूर वार किया। संन्यासी ने कतराकर एक जनेवा का हाथ जा दिया, तो युवक की तलवार झनाकर दस हाथ दूर पड़ी। संन्यासी ने युवक के कंठ पर तलवार रखकर कहा—“वत्स, बस यही तुम्हारा कौशल है? इस समय शत्रु क्या तुम्हें जीवित छोड़ता?”

युवक ने लज्जा से लाल होकर गुरु के चरण छुए और फिर तलवार उठा ली। इस बार उसने अन्धाधुन्ध बार किये, पर संन्यासी मानो विदेह पुरुष हैं। उनका शरीर मानो दैव-कवच से रक्षित था। वह बार बचाते, युवक को सावधान करते और तत्काल उसके शरीर पर तलवार छुला देते थे। अन्त में युवक का दम बिलकुल फूल गया। उसने तलवार गुरु के चरणों में रख दी और स्वयं भी लोट गया। गुरु ने उसे छाती से लगाया, और कहा—“वत्स, आज ही श्रावणी पूर्णिमा है, महाराज अभी आते होंगे। आज तुम्हें इस संन्यासी को त्यागना होगा और जिस पवित्र व्रत को तुमने लिया है, उसमें अभ्रसर होना होगा। यद्यपि मैं जैसा चाहता था, वैसा तो नहीं, पर फिर भी तुम पृथ्वी पर अजेय योद्धा हो, तुम्हारी तलवार और बर्छे के सम्मुख कोई वीर स्थिर नहीं रह सकता।”

युवक फिर गुरु-चरण में लोट गया। उसने कहा—“प्रभो, अभी मुझे और कुछ सेवा करने दो।”

“नहीं वत्स, अभी तुम्हें बहुत कार्य करना है, उसकी साधना ही मेरी चरण-सेवा है।”

हठात् वज्र-ध्वनि हुई।

“छत्रपति महाराज शिवाजी की जय !” दोनों ने देखा, महाराज घोड़े से उतर रहे हैं। उन्होंने धीरे-धीरे आकर संन्यासी की चरण-रज ली और संन्यासी ने उन्हें उठाकर आशीर्वाद दिया युवक ने आकर महाराज के सम्मुख घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया। महाराज ने कहा—“युवक, आज वही श्रावणी पूर्णिमा है।” “जी।” “आज उस घटना को तीन वर्ष हो गये, जब तुम्हें घायल करके शत्रु तुम्हारी बहन को हरण कर ले गये थे, तुम्हें भ्रमण है ?”

“हाँ महाराज, और आपने मुझे जीवन-दान दिया था, मैंने यह प्राण और शरीर आपकी भेंट किये थे।” “और तुमने प्रतिशोध की प्रतिज्ञा की थी?” “जी हाँ।” “मैंने तुम्हें गुरुजी की सेवा में तीन वर्ष के लिये इसलिये रक्खा था कि तुम शरीर, आत्मा और भावना के गम्भीर और दृढ़ बनो; तामसिक क्रोध का नाश करो, सात्विक तेज की ज्वाला से प्रज्वलित होओ।” “हाँ महाराज, गुरु-कृपा से मैंने आत्मशुद्धि की है।” “और अब तुम वैयक्तिक स्वार्थ के दास तो नहीं?” “नहीं प्रभो।” “प्रातिशोध लोगे?” “अवश्य।” “अपनी बहन का?” “नहीं, एक हिन्दू अबला की स्वतंत्रता-हरण का, मर्यादा-रहित पाप का।” “और तुममें वही शक्ति है?” “गुरु चरण की कृपा और महाराज की छत्रच्छाया में मैं उसे प्राप्त करूँगा।” “तुम्हारी तलवार में धार है?” “है।” “और तुम्हारी कलाई में उसे धारण करने की शक्ति?” “है।” “समय की प्रतीक्षा का धैर्य?” “प्रतीक्षा का धैर्य?” युवक ने अधोर होकर कहा। “हाँ, धैर्य?” महाराज ने कठोर स्वर में कहा।

युवक का मस्तक झुक गया और उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। उसने कहा—“महाराज, धैर्य तो नहीं है।” वह महाराज के चरणों में गिर गया। महाराज ने उठाकर उसे छाती से लगाया! वह संन्यासी की ओर देखकर हँस दिये। उन्होंने कहा—“गुरु की क्या आज्ञा है?” “ताना तैयार है, मैंने उसे गुरु-दीक्षा दे दा है।” फिर कहा—“बत्स!” युवक ने गुरु की आर आँखें उठाईं। वे अब भी आँसुओं से तर थीं। “शान्त हो, देखो, सदैव कर्तव्य समझ कर कार्य करना। फल की चिंतना न करना।” युवक झुप रहा। “यदि फल की आकांक्षा करोगे, तो धैर्य से च्युत हो जाओगे और कदाचित् कर्तव्य से भी।”

“प्रभो, मैं अपनी भूल समझ गया।” “जाओ पुत्र, महाराज की सेवा में रहो, विजयी बनो। भारत के दुर्भाग्य को नष्ट करो। नवीन जीवन, नवोन युग का प्रवर्तन करो। धर्म, नीति, मर्यादा और सामाजिक स्वातंत्र्य के लिये प्राण और शरीर एवं स्वार्थों का विसर्जन करो।”

युवक ने गुरु-चरणों में मस्तक नवाया। संन्यासी के नेत्रों में आँसू आ गये। उन्होंने कहा—“वत्स जाओ जाओ। संन्यासी को अधिक आप्यायित न करो। वीतराग संन्यासी किसी के नहीं।”

इसके बाद उन्होंने महाराज से एक संकेत किया। महाराज संन्यासी को अभिवादन कर घोड़े पर चढ़े। एक घोड़े पर युवक चढ़ा और धीरे-धीरे उस पर्वत-शृङ्ग में उतर चले।

संन्यासी शिला-खण्ड की भाँति अचल रहकर उन्हें देखते रहे, जब तक वे आँख से ओझल नहीं हो गये।

(३)

ग्राम में बड़ा कोलाहल था। बालक धूम मचा रहे थे और विविध वस्त्र पहने स्त्री-पुरुष काम-काज में व्यस्त इधर से उधर दौड़-धूप कर रहे थे। तानाजी का विवाह था। द्वार पर नौबत म्फर रही थी। आगत जनों की काफी भीड़ थी।

संध्या होने में अभी विलंब था। एक श्रमिन् शिथिल साँड़नी-सवार ने नगर में प्रवेश किया। थोड़े से बालक कौतूहल-वश उसके पीछे हो लिये। ग्राम के चौराहे पर जाकर उसने अपनी बगल से छोटी-सी तुरही निकालकर फूँकी। देखते-देखते दस-बीस नर-नारी और बहुत से बालक एकत्र हो गये। सवार ने एक वृद्ध को लक्ष्य करके कहा—“मुझे तानाजी के मकान पर अभी पहुँचना है।”

तुरन्त दस-पाँच आदमी साथ हो लिये। सम्मुख ही तानाजी का घर था। वहाँ पहुँचकर उसने फिर तुरही बजाई। कोलाहल बन्द हो गया। सभी व्यग्र होकर आगंतुक को देखने लगे। उसने जरा उच्च स्वर से पुकारकर कहा—‘छत्रपति शिवाजी महाराज की जय हो। मैं तानाजी के पास महाराज का अत्यावश्यक संदेश लेकर आया हूँ। अभी तानाजी से मुलाकात न होने से महाराज विपत्ति में पड़ेंगे।’ उपस्थित जन-मंडल ने चिल्लाकर कहा—“छत्रपति महाराज की जय।”

हल्दी से शरीर लपेटे व्याह का कँगना हाथ में बाँधे तानाजी बाहर निकल आये। धावन ने उन्हें पत्र दिया। पत्र पढ़कर तानाजी क्षण भर को विचलित हुए। इसके बाद ही उन्होंने अग्निमय नेत्रों से उपस्थित जन-समूह को देखा। वह उछलकर एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गये और उन्होंने गम्भीर, उच्च स्वर से कहना प्रारम्भ किया—“सज्जनो! महावीर छत्रपति महाराज ने मुझे इसी क्षण बुलाया है। बीजापुर-शाह महाराज पर चढ़ दौड़े हैं, यह शरीर और प्राण महाराज का है। फिर बहन के प्रतिशोध का भी यही महायोग है। मैं इसी क्षण जाऊँगा। आप लोग कल प्रातःकाल ही प्रस्थान करें। विवाह-समारोह अनिश्चित समय के लिये स्थगित किया गया।”

तानाजी बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये चीते की भाँति उछल कर कूद पड़े और घर में चले गये। कुछ ही क्षण बाद वह अपने प्यारे बर्छे और विशाल तलवार के साथ सज्जित होकर घोड़े पर सवार हुए। विवाह का आनन्द-समारोह स्तब्ध हो गया। पिता और गुरुजन को प्रणाम कर उन्होंने बढ़ते हुए सन्ध्या के अन्धकार में डूबते हुए सूर्य को लक्ष्य कर, उन दुर्गम पर्वत-उपत्यकाओं में घोड़ा छोड़ दिया।

“महाराज की जय हो, मेरी एक विनती है।” “क्या कहते हो ?” “बीजापुर की सेना परमों अवश्य ही दुर्ग पर आक्रमण करेगी।” “सा तो सुन चुका हूँ।” “दुर्ग की पूरी मरम्मत नहीं हो पाई है, ऐसा दशा में वह आक्रमण न सह सकेगा।” “मालूम तो ऐसा ही होता है।” “परन्तु कल सन्ध्या तक दुर्ग बिलकुल सुरक्षित हो जायगा।” “यह तो अच्छी बात है।” “परन्तु महाराज अपराध क्षमा हो।” “कहो।” “एक निवेदन है।” “क्या ?” “अधिक नहीं, केवल एक-एक मुट्ठी चना मेरे सैनिकों और मजदूरों को मिल जाय तो फिर वे कल सन्ध्या तक और कुछ नहीं चाहते।” “यह तो तुम जानते ही हो, वह मैं न दे सकूँगा।”

तानाजी चुप रहे। महाराज भी चुप हो गये। वह चंचल गति से इधर-उधर घूमने लगे।

एक प्रहरी ने सम्मुख आकर कहा—“महाराज, एक फिरंगी दुर्ग-द्वार पर उपस्थित है, दर्शनों की इच्छा करता है।” महाराज ने चकित होकर कहा—“फिरंगी ? वह कहाँ से आया है ?” “सूरत से आ रहा है।” “माथ में कोन है ?” “दो मवार हैं।” “क्या चाहता है ?” “महाराज से मुलाकात करना।”

क्षण भर महाराज ने कुछ सोचा, इसके बाद तानाजी को आज्ञा दी—“उसे महल के बाहरी कक्ष में ले आओ।” तानाजी ने “जो आज्ञा” कहकर प्रस्थान किया, और महाराज भी कुछ सोचते हुए महल की ओर चले गये। “तुम्हारा देश कौन है ?” “मैं फ्रान्स देश का अधिवासी हूँ।” “क्या चाहते हो ?” “महाराज मैं कुछ हथियार बीजापुर के बादशाह के हाथ बेचने लाया था, परन्तु यहाँ आने पर आपकी यशोगाथा का विस्तार प्रजा में सुनकर इच्छा होती है, वे हथियार मैं आपको दे दूँ, यदि महा-

राज प्रसन्न हों। मेरे पास ५० छोटी विलायती तोपें, ५ हजार बन्दूकें और इतनी ही तलवारें हैं। सभी हथियार फ्रांस देश के बने हुए हैं। और भी युद्ध-सामग्री है।”

महाराज ने मंद हास्य से पूछा—“उनका मूल्य क्या है?” “महाराज को मैं यह सब १० लाख रु० में दे दूँगा, यद्यपि माल बहुत अधिक मूल्य का है।” महाराज की दृष्टि विचलित हुई। परन्तु उन्होंने दृढ़-गम्भीर स्वर से कहा—“मैं कल इसी समय इसका उत्तर दूँगा। अभी तुम विश्राम करो।”

फिरंगी चला गया। महाराज अत्यन्त चंचल गति से टहलने लगे। रात्रि का अन्धकार आया। तानाजी मशालें लिये, किले की मरम्मत में संलग्न थे। महाराज ने उन्हें बुलाकर कहा—“तानाजी, अब समय आ गया। अभी सारी सेना को तैयार होने का आदेश दे दो।” “जो आज्ञा महाराज। कूच कहाँ करना होगा?” “इस फिरंगी का जहाज लूटना होगा।”

तानाजी आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। क्षणभर बाद बोले—“महाराज की जय हो। यह क्या आज्ञा दे रहे हैं?”

महाराज ने लपककर तानाजी की कलाई कसकर पकड़ ली। उन्होंने कहा—“युवक सेनापति! देखते हो, दुर्ग छिन्न-भिन्न और अरक्षित है। सेना के पास न शस्त्र, न घोड़े, और खजाने में इनको देने के लिये एक मुट्ठी चना भी नहीं। उधर विजयिनी यवन-सेना बीजापुर से धावा मारकर आ रही है। क्या मैं समय और उपाय रहते पिस मरूँ? ये हथियार भवानी ने मुझे दिये हैं। छोड़ूँगा कैसे? उस फिरंगी को कैद कर लो। उसको रुपया देकर मुक्ति कर दी जायगी। जाओ, सेना को अभी तैयार होने का आदेश दो। ठीक दो पहर रात्रि व्यतीत होते ही

कूच होगा ।” तानाजी कुछ कह न सके । वह सेना को आदेश देने चल दिये ।

(५)

महाराज बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे । पोछे दो शरीर-रक्षक चुपचाप खड़े थे । तानाजी ने सम्मुख आकर कहा—“महाराज की जय हो, कूच का समय हो गया है, सेना तैयार है ।”

महाराज चौंकर उठ बैठे । वह चमत्कृत थे । उन्होंने कहा—“तानाजी !” “महाराज ।” “मुझे भवानी ने स्वप्न में आदेश दिया है ।” “वह कैसा आदेश है ?” “यह सम्मुख मंदिर की पीठ दिखाई पड़ती है न ?” “हाँ महाराज ।” “अभी मैं बैठे-बैठे साँ गया, इसमें जो वह मोखा है, उसमें से एक रत्न-जटित गहनों से लदा हुआ हाथ निकलकर इसी स्थान की ओर संकेत करता है, मैंने स्पष्ट सुना किसी ने कहा यहीं खोदो ।” “महाराज की क्या आज्ञा है ?” “भवानी का आदेश अवश्य पूरा होना चाहिये । उस स्थान को खुदवाओ ।”

तत्काल चार बेलदारों ने खोदना प्रारम्भ किया । देखते-देखते बड़ा भारी गहरा गड्ढा हो गया । मिट्टी का ढेर लग गया । तानाजी ने ऊँचकर कहा—“महाराज, अब केवल एक प्रहर रात्रि रही है । “ठहरो, क्या नीचे मिट्टी ही मिट्टी है ?” भीतर से एक बेलदार ने चिल्लाकर कहा—“महाराज ! पत्थर पर कुदाल लगा है ।” महाराज ने व्यग्र स्वर में कहा—“सावधानी से खोदो ।” “महाराज की जय हो ! नीचे पटिया है । उसमें एक लोहे का भारी कुंडा है ।” “उसे बलपूर्वक उखाड़ लो ।” “महाराज, नीचे सीढ़ियाँ प्रतीत होती हैं । प्रकाश आना चाहिये ।”

प्रकाश आया । तानाजी नंगी तलवार लेकर गड्ढे में कूद

गये। दो और भी वीर कूद गये। महाराज विकलता से खड़े गम्भीर प्रतीक्षा करते रहे।

तानाजी ने बाहर आकर वख्शों की धूल झाड़ते हुए अपनी तलवार ऊँची की, और फिर तीन बार खूब जोर से कहा—“छत्रपति महाराज की जय।” निकट खड़ी सेना प्रलयगर्जन की भाँति चिल्ला उठी—“छत्रपति महाराज की जय!” इसके बाद तानाजी महाराज के निकट खड़े हो गये। महाराज ने पूछा—“भीतर क्या है?” “भवानी का प्रसाद है।” “कितना है?” “चालीस डेगें मुहरों की भरी रक्खा हैं। चाँदी के सिक्के भी इतने ही हैं। एक चाँदी की सन्दूकची में बहुत से रत्न हैं।”

महाराज एक बार प्रकंपित वाणी से चिल्ला उठे—“जय भवानी माता की!” एक बार फिर वज्र-गर्जन हुआ। इसके बाद महाराज ने तानाजी को आदेश दिया—“सेना को विश्राम की आज्ञा दी जाय और सब खजाना सुरक्षित रूप से निकालकर तोशाखाने में दाखिल कर दिया जाय।”

(६)

नगर के गण्य-मान्य जौहरी बैठे थे। वहीं चाँदी की सन्दूकची सम्मुख रक्खी थी। महाराज ने कहा—“इसका क्या मूल्य है?” “महाराज, इसका मूल्य कूतना असम्भव है। यह मोतियों की माला ही अकेली दस लाख से कम मूल्य की नहीं।” महाराज ने उन्हें बिदा करके उस फ्रेंच को बुलाकर कहा—“क्या तुम इन रत्नों का कुछ मूल्य अंकित कर सकते हो?” फिरंगी रत्नों की राशि देखकर दंग रह गया। उसने बड़े ध्यान से मोतियों की माला को देखकर कहा—“यदि महाराज की आज्ञा हो, तो मैं इस अकेली माला के बदले में अपना संपूर्ण हथियार दे सकता हूँ।” महाराज मुस्कराये। उन्होंने कहा—“उसे तुम

रख लो, मेरे निकट वह कंकड़-पत्थर के समान है। वे सभी हथियार और सामग्री मुझे आज सन्ध्या से पूर्व ही मिल जानी चाहिए।” “जो आज्ञा महाराज।” फिरंगी चला गया। चौबदार ने प्रवेश करके कहा—“महाराज की जय हो ! एक चर सेवा में उपस्थित हुआ चाहता है ?” “उसे अभी भेज दो।” चर ने महाराज के चरणों में सिर झुकाया। “तुम हो महाभद्र।” “महाराज की जय हो, सेवक इसी क्षण सुसमाचार निवेदन किया चाहता है।” “क्या समाचार है ?” “बीजापुर-शाह का खजाना इसी मार्ग से जा रहा है।” “कितना खजाना है ?” “पैंतीस खच्चर मुहरें हैं।” “सेना कितनी है ?” “पाँच हजार।” “शेष सेना कहाँ है ?” “वह सिंहगढ़ में महाराज पर आक्रमण की तैयारी में सन्नद्ध है। खजाना पहुँचा, और आक्रमण हुआ।” “निश्चित रहो, खजाना वहाँ कभी न पहुँचेगा। जाओ, तानाजी को भेज दो। और, स्वयं यह पता लगाओ कि खजाना आज दो पहर रात तक कहाँ पहुँचेगा ?” “जो आज्ञा” कहकर चर ने प्रस्थान किया। क्षण भर बाद तानाजी ने प्रवेश कर कहा—“महाराज की क्या आज्ञा है ?” “क्या वे हथियार सब मिल गये ?” “जी महाराज !” “तोपें कैसी हैं ?” “अत्युत्तम, वे सभी बुजियों पर चढ़ा दी गईं।” “बन्दूकें ?” “सब नई और उत्तम हैं। सब बन्दूकें, बर्छे और तलवारें भी बाँट दी गई हैं।” “तुम्हारे पास कुल कितने घोड़सवार हैं ?” “सिर्फ पाँच सौ।” “शेष ?” शेष सब अशिक्षित किसानों की भीड़ है। उन्हें शस्त्र अवश्य मिल गये हैं, परन्तु उन्हें चलाना कदाचित् वे नहीं जानते।” बहुत ठीक, बीजापुर-शाह का खजाना सिंहगढ़ जा रहा है। वह अवश्य वहाँ न पहुँचकर यहाँ आना चाहिए। परन्तु उसके साथ पाँच हजार चुने हुए सवार हैं। तुम अभी पाँच सौ सैनिक लेकर उन पर धावा बोल दो।” “जो आज्ञा।”

“परन्तु युद्ध न करना, जैसे बने, उन्हें आगे बढ़ने में बाधा देना ।” “जो आज्ञा ।” “मैं प्रभात होते-होते समस्त पैदल सेना-सहित तुमसे मिल जाऊँगा ।” “जो आज्ञा ।” तानाजी ने तत्काल कूच कर दिया :

(७)

दोपहरी की तीव्र सूर्य-किरणों में धूल उड़ती देखकर यवन-सैनिक सजग हो गये । उनके सरदार ने ललकारकर व्यूह-रचना की, और खच्चरों को खास इन्तजाम में रखकर मोर्चेबन्दी पर डट गये । कूच रोक दिया गया ।

तानाजी घुआँधार बढ़े चले आ रहे थे । दोपहर होते-होते ही उन्होंने खजाना घर दबाया था । उन्होंने देखा, यवन-दल कूच रोककर, मोर्चा बाँधकर युद्ध-सन्नद्ध हो गया है । तानाजी ने भी आक्रमण रोककर वहाँ मोर्चा जमा दिया । यवन-दल ने देखा—शत्रु जो धावा बोलता हुआ पीछा कर रहा था, आक्रमण न करके वहीं मोर्चा बाँधकर रुक गया है । इसके क्या माने ? यवन-सेनापति ने स्वयं आक्रमण कर दिया ।

यवन-सेना को लौटकर धावा करते देख तानाजी ने शीघ्रता से पीछे हटना प्रारम्भ कर दिया । दो-तीन मील तक पीछा करने पर भी शत्रु भागता ही चला गया, तब यवन-सेनापति ने आक्रमण रोककर, सेना की शृंखला बना फिर कूच कर दिया ।

परन्तु यह देखते ही तानाजी फिर लौटकर यवन-सेना का पीछा करने लगे । यवन-सेनापति ने यह देखा । उसने सोचा, डाकू घात लगाने की चिन्ता में हैं । उसने क्रुद्ध होकर फिर एक बार धावा किया, पर तानाजी फिर लौटकर भाग चले ।

संध्या-काल हो गया । यवन-सेनापति ने खीजकर कहा—

“ये पहाड़ी चूहे न लड़ते हैं और न भागते हैं, अवश्य अन्य सेना की प्रतीक्षा में हैं। साथ ही कम भी हैं।” अतः उसने व्यवस्था की कि तीन हजार सेना के साथ खजाना आगे बढ़े, और दो हजार सेना लेकर इन डाकुओं को यहाँ रोके रहे। इस व्यवस्था से आधी सेना के साथ खजाना आगे बढ़ गया। शेष दो हजार सैनिकों ने बेग से तानाजी पर आक्रमण किया। तानाजी बड़ी फुर्ती से पीछे हटने लगे। धीरे-धीरे अन्धकार हो गया। यवन-दल लौट गया। परन्तु चतुर तानाजी समझ गये कि खजाना आगे बढ़ गया है। वह उपाय सोचने लगे। एक सिपाही ने घोड़े से उतर कर तानाजी की रकाब पकड़ी। तानाजी ने कहा—“क्या है?” “आप जो सोच रहे हैं, उसका उपाय मैं जानता हूँ।” “क्या उपाय है?” “यहाँ से बीस कोस पर एक गाँव है।” “फिर?” “वहाँ मेरे बहुत सम्बन्धी हैं।” “अच्छा।”

“उस गाँव के पास एक घाटी है, जिसके दोनों ओर दुर्बुह, ऊँचे पर्वत हैं, और बीच में सिर्फ दो सवारों के गुजरने योग्य जगह है। यह घाटी लगभग पौन मील लंबी है।” तानाजी ने विचलित होकर कहा—“तुम चाहते क्या हो?” “यवन-सेना वहाँ प्रातःकाल पहुँचेंगी।” “अच्छा फिर?” “मैं एक मार्ग जानता हूँ, जिसमें मैं पहर रात्रि गये वहाँ पहुँच सकता हूँ। श्रीमान्, मुझे केवल पचास सवार दीजिये। मैं गाँववालों को मिला लूँगा और घाटी का द्वार रोक लूँगा। यवन-दल रक्षा की धारणा से तुरन्त घाटी में प्रवेश करेगा। पीछे से आप घाटी के मुख को रोक लीजिये। शत्रु चूहेदानी में मृसे के समान फँस जायँगे।”

तानाजी गम्भीरता-पूर्वक सोचने लगे। अन्त में उन्होंने कहा—“मैं तुम्हारी तजबीज पसन्द करता हूँ। पचास सैनिक चुन लो।” सिपाही ने पचास सैनिक चुनकर चुपचाप खेत की

पगडंडी का रास्ता लिया। तानाजी ने यवन-दल पर फिर आक्रमण करने की तैयारी की।

(८)

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे को चीरकर तुरही का शब्द हुआ। सोये हुए ग्राम-वासी हड़बड़ाकर उठ बैठे। देखा ग्राम के बाहर थोड़े-से घुड़सवार खड़े हैं। गाँव के पटेल ने भयभीत होकर पूछा—“तुम लोग कौन हो और क्या चाहते हो?” सैनिकों ने चिल्लाकर कहा—“हिन्दू-धर्म-रक्षक छत्रपति महाराज शिवाजी की जय!” गाँव के निवासी भी चिल्ला उठे—“जय, महाराज शिवाजी की जय!” एक सवार तीर की भाँति दौड़कर ग्राम-वासियों के निकट आया। उसने कहा—“सावधान रहो छत्रपति महाराज शिवाजी ने हिन्दू-धर्म के उद्धार का बोझ उठाया है, वह साक्षात् शिव के अवतार हैं। आज सूर्योदय होते ही तुम्हें उनके दर्शन होंगे।” यह सुनते ही ग्राम-वासी चिल्ला उठे—“महाराज शिवाजी की जय!” “पर सुनो, आज इस गाँव की परीक्षा है। भाइयो, यवन-सेना इधर को आ रही है। आज इसी गाँव में उसका अन्त होगा और वीरता का सेहरा इस गाँव के नाम बँधेगा।” ग्राम-वासियों ने उत्साह से कहा—“हम तैयार हैं, हम प्राण देंगे।” “भाइयो, हमारी विजय होगी। प्राण देने की आवश्यकता नहीं। अभी दो पहर का समय हमें है। आओ, घाटी के उस पार का द्वार वृत्तों और पत्थरों से बन्द करदें और सब लोग पर्वतों पर चढ़कर छिप बैठें। बड़े-बड़े पत्थर इकट्ठे रखें, ज्यों ही यवन-दल घाटी में घुसे, देखते रहो। जब सब सेना घाटी में पहुँच जाय, ऊपर से पत्थरों की भारी मार करो। पीछे के मार्ग को महाराज शिवाजी स्वयं रोकेंगे।” समस्त गाँव ‘जय शिवाजी महाराज’ कहकर कार्य में जुट गया।

प्रातःकाल होने से पूर्व ही यवन-दल तेजी से घाटी में घुसा। तानाजी पीछे धावा मारते आ रहे हैं, यह वे जानते थे। घाटी पार करने पर वे सुरक्षित रहेंगे, इसका उन्हें विश्वास था। परन्तु एक बारगी ही आगे बढ़ती हुई सेना की गति रुक गई। बड़ी गड़बड़ी फैली। कहाँ क्या हुआ, यह किसी ने नहीं जाना। परन्तु घाटी का द्वार भारी पत्थरों और बड़े बड़े घृत्नों को काटकर बन्द कर दिया गया था। उसके बाहर खड़े ग्राम-वासी और सवार दरारों के द्वारा तीर छोड़ रहे थे।

सारी यवन-सेना में गड़बड़ी फैल गई। यवन-सेनापति ने पीछे लौटने की आज्ञा दी, परन्तु अरे ! यहाँ तानाजी की सेना मुस्तैदी से खड़ी तीर फेंक रही थी। अब एक और भारी विपत्ति आई। ऊपर से अगणित बाणों की वर्षा होने लगी और भारी-भारी पत्थर लुढ़कने लगे। घोड़े, खच्चर, सिपाही सभी चक्रनाचूर होने लगे। भयानक चीत्कार मच गया। मुहाने पर दो-चार सिपाही आकर युद्ध करके कट गिरते थे। लाशों का ढेर हो रहा था।

यवन-सेनापति ने देखा, प्राण बचने का कोई मार्ग नहीं है। सहस्रों सिपाही मर चुके थे। जो थे, वे क्षण-क्षण पर मर रहे थे। उसने तानाजी से कहला भेजा, खजाना ले लीजिए और हमारी जान बख्श दीजिए।

तानाजी ने हँसकर कहा—“जान बख्श दी जायगी, पर खजाना, हथियार और घोड़े, तीनों चीजें देना होगा।” विवश यही किया गया।

एक-एक मुगल सिपाही आता, घोड़ा और हथियार रखकर एक ओर चल देता। ग्रामवासियों ने मार बन्द कर दी थी। बहुत कम यवन-सैनिक प्राण बचा सके। घोड़े, शस्त्र और खजाना तानाजी ने कब्जे में कर लिया। सूर्य की लाल-लाल

किरणें पूर्व में उदय हुईं। तानाजी ने देखा, दूर से गर्द का पर्वत उड़ा आता है। उन्होंने सभी ग्रामवासियों को एकत्र करके कहा—“सावधान रहो महाराज आ गये हैं।”

महाराज ने घोड़े से उतरकर तानाजी को गले से लगा लिया। ग्रामवासियों ने महाराज की पूजा की और लूटा हुआ सभी माल लेकर शिवाजी अपने किले में लौटे। इस प्रकार संयोग, प्रारब्ध और उद्योग ने सोलह पहर के अन्तर में ही असहाय महाराज शिवाजी को सर्व-साधन-सम्पन्न बना दिया, जिसके बल पर वह अपना महाराज्य कायम कर सकें।

(६)

स्तब्ध रात्रि के सन्नाटे में सैनिकों का प्रशान्त दल चुपचाप आगे बढ़ा जा रहा था। सकरी पगडंडी के दोनों ओर ऊँचे-ऊँचे सरकंडे के झाड़ खड़े थे। तारों के क्षीण प्रकाश में घोड़ों को कष्ट होता था, पर सेना की अबाध-गति जारी थी।

हठात् सैनिक रुक गये। अग्रगामी सैनिक ने पंक्ति से पीछे हटकर कहा—“श्रीमान्, बस यही स्थान है।” “आगे रास्ता नहीं?” “नहीं श्रीमान्।” “तब यहाँ से क्या उपाय किया जाय?” “इस ढालू चट्टान पर चढ़ना होगा।” “यह बहुत कठिन है।” “परन्तु दूसरा उपाय ही नहीं है।” “तब चढ़ो।” सेना-नायक चट्टान को दोनों हाथों से टढ़ता से पकड़कर खड़ा हो गया।

देखते-देखते दूसरा सैनिक छल्लाँग मारकर चट्टान पर हो रहा और सेना-नायक को खींच लिया। उस बीहड़ और सीधी खड़ी चट्टान पर धीरे-धीरे ये हठी सैनिक उस दुर्भेद्य अन्धकार में चढ़ने लगे। दुर्ग-प्राचीर के निकट आकर नायक ने कहा—“अब रस्सियाँ चाहिये।”

“रस्सियाँ उपस्थित हैं।”

रस्सियों को फेंककर प्राचीर के कँगूरे में अटक दिया गया और क्षण-भर में नायक प्राचीर पर चढ़कर लेट गया। इसके बाद दूसरा और फिर तीसरा। इस प्रकार बारह सैनिक दुर्ग-प्राचीर पर चढ़कर, अवशिष्ट सैनिकों को समुचित आदेश देकर नीचे उतर गये। दुर्ग में सन्नाटा था। सब चुपचाप दीवारों की छाया में छिपते हुए फाटक की ओर बढ़ रहे थे। फाटक पर प्रहरी असावधान थे। एक ने सजग होकर पुकारा—
“कौन ?”

दूसरे ही क्षण एक तलवार का भरपूर हाथ उस पर पड़ा। सभी प्रहरी सजग होकर आक्रमण करने लगे। देखते ही देखते किले में कोलाहल मच गया। जगह-जगह योद्धा शस्त्र बाँधने और चिल्लाने लगे। मसालों के प्रकाश में इधर-उधर घूमने लगे।

बारहों व्यक्ति चारों ओर से घिर गये। परन्तु वे भीम वेग से फाटक की ओर बढ़ रहे थे। प्रहरी मन में भयभीत थे। तानाजी ने एक बार प्रचंड जय-घोष किया और उछलकर फाटक पर चढ़ बैठे। बारहों साथियों ने शत्रु-दल को तलवार के बल चीर डाला और तानाजी ने साहस करके फाटक खोल दिया।

‘हर-हर महादेव’ करती हुई महाराष्ट्र-सेना घुस पड़ी। बड़ा भारी घमासान मच गया। रुंढ-मुंढ डोलने लगे। घोड़ों की चीत्कार, योद्धाओं की ललकार और तलवारों की झनकार ने भयानक दृश्य उपस्थित कर दिया।

तानाजी ने ललकार कर कहा—“किधर है यवन-सेनापति, जो मर्द की भाँति युद्ध करे।” यवन-सेनापति ने जोर से कहा—
“काफिर, मैं यहाँ हूँ। सामने आ, गरीब सिपाहियों को क्यों हटाता है ?” तानाजी उछलकर सेनापति के सम्मुख गये। दोनों

में घमासान युद्ध होने लगा । दोनों तलवार-धनी थे । मसालों के धुँधले प्रकाश में दोनों योद्धाओं का असाधारण युद्ध देखने को सेना स्तब्ध खड़ी हो गई । तानाजी ने कहा—“सेनापति पहले तुम वार करो, आज मैं तुम्हें मारूँगा ।” “काफिर, अभी तेरे टुकड़े किये डालता हूँ ।” उसने तलवार का भरपूर वार किया । “अरे आज बहुत दिन की साध पूरी होगी ।” बदले में तलवार का जनेवा हाथ फेंकते हुए तानाजी ने कहा—“लो ।” सेनापति के मोढ़े पर तलवार लगी और रक्त की धार बहने लगी । उसने तड़पकर एक हाथ तानाजी की जाँघ में मारा । जाँघ कट गई । तानाजी ने गिरते-गिरते एक बछी सेनापति की छाती में पार कर दिया । दोनों वीर घोड़े से गिर पड़े ।

अब सेना में घमासान मच गया । उदयभानु की राजपूत-सेना और यवन-सेना परास्त हुई । सूर्योदय से पूर्व ही किले पर भगवा भंडा फहराने लगा ।

लाशों के ढेर में से तानाजी का शरीर निकाला गया । अभी तक उसमें प्राण था । थोड़े उपचार से होश में आकर उन्होंने कहा—“क्या किला फतह हो गया ?” “हाँ महाराज ।” “यवन सेनापति क्या जीवित हैं ?” यवन-सेनापति भी जीवित था । उसका शरीर भी वहीं था । तानाजी ने क्षीण स्वर में पुकारा—“सेनापति !” “काफिर ?” “पहचानते हो ?” “दुश्मन को पहचानना क्या ? तुम कौन हो ?” “पन्द्रह वर्ष प्रथम जिसे आक्रांत करके तुमने उसकी बहन का हरण किया था ।” सेनापति उत्तेजना के मारे खड़ा हो गया । फिर धड़ाम से गिर गया उसके मुख से निकल—“तानाजी ?” “आज बहन का बदला मिल गया ।” यवन-सेनापति मर रहा था । उसका श्वास ऊर्ध्वगत हो रहा था और आँखें पथरा रही थीं । उसने टूटते स्वर में कहा—“तुम्हारी बहन और बच्चे इसी किले में हैं, उनकी हिफाजत” ।

यवन-सेनापति मर गया । तानाजी की दशा भी अच्छी नहीं थी, ये शब्द मानो वह सुन नहीं सके । उन्होंने टूटते स्वर में कहा—“महाराज से कहना, तानाजी ने जीवन सफल कर लिया । महाराज बहन की रक्षा करें ।”

तानाजी ने अंतिम श्वास समाप्त की ।

(१०)

शुभ मुहूर्त्त में छत्रपति महाराज ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया । प्रांगण में विषण्ण-वदन सैनिक नीची गर्दन किये खड़े थे । घोड़े से उतरते हुए शिवाजी ने कहा—“मेरा मित्र तानाजी कहाँ है ?”

एक अधिकारी ने गंभीर मुद्रा से कहा—“वह वीर वहाँ बरामदे में श्रीमान् की अभ्यर्थना को बैठे हैं ।”

अधिकारी रोता हुआ पीछे हट गया । महाराज ने पैदल आगे जाकर देखा ।

यह निश्चल मूर्ति सैकड़ों घाव छाती और शरीर पर खाकर वीरासन से विराजमान थी । महाराज की आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे । उन्होंने शोक कंपन स्वर में कहा—“सिंहगढ़ आया, पर सिंह गया ।”



कला और कृत्रिमता

[श्री रायकृष्णदास]

सम्राट् ने एक महल बनाने की आज्ञा दी—अपने वैभव के अनुरूप, अपूर्व, सुख और सुखमा की सीमा ।

देश-भर के बड़े-बड़े स्थपतियों का दिमाग उसी का नक्शा तैयार करने में भिड़ गया । नक्शा तैयार हुआ । उसे देखकर सम्राट् फड़क उठे; उनके गर्व को बड़ी मधुर गुदगुदी हुई । जिस का नक्शा पसन्द हुआ था, उसके भाग्य खुल गये ।

जिस समय उस महल की तैयारी का चित्र उनके मनोनेत्र के सामने खड़ा हुआ, संसार के बड़े-से-बड़े प्रासाद-निर्माता नरेन्द्र—आर्य्यावर्त्त, मिस्र, मय, बाबुल, चीन, इरान, यूनान, रोम आदि के—तुच्छ मालूम हुए, क्योंकि उन्होंने भव्यता और चारुता का जो प्रदर्शन किया था वह इसके आगे कुछ भी न था ।

जिन मर्दों से सम्राट् मत्त हो रहे थे आज उनमें एक और बढ़ा ।

जिस भाग्यवान् स्थपति की कल्पना ने इस भवन की उद्भावना की थी उसके तो पैर ही जमीन पर न पड़ते थे । सातवें आसमान की उड़ान में उसे अपनी इस कृति के सिवा अन्यत्र कला दीख ही न पड़ती थी ।

अस्तु ।

संसार-भर की एक-से-एक मूल्यवान और दुर्लभ सामग्रियाँ एकत्र की गईं और वह प्रासाद बनने लगा। लाखों वास्तुक, लाखों शिल्पी काम करने लगे।

नीहार भी उन्हीं में से था। संगतराशों की टोली का वह मुखिया था और उसके काम से उसके प्रधान सदैव सन्तुष्ट रहते थे। किन्तु वह अपने काम से सन्तुष्ट न था। उसमें कल्पना थी— जो नक्शे उसे पत्थरों में तराशने को दिये जाते उनमें हेर-फेर और घटाव-बढ़ाव की जो भी आवश्यकता सुरुचि को अभीष्ट होती, उसे तुरन्त भास जाती। परन्तु उसका कर्त्तव्य था केवल आज्ञापालन, अतः यह आज्ञापालन वह अपनी उमंग को कुचल-कुचल कर किया करता। पत्थर गढ़ते समय टाँकी से उड़ा हुआ छोट्टा उसकी आँखों में उतना न कसकता जितना उन नक्शों की कुघरता।

इतना ही नहीं, उस सारे महल की कल्पना हो उसे वास्तु के मूल-पुरुष, मय असुर, की ठठरी-सी मालूम होती और उस स्थान पर पहुँचते ही उसे ऊजड़, भयावनपन और बदनुमापन की ऐसी प्रतीति होती कि वह सिहर उठता, मन में कहता—अच्छा ढङ्गा खड़ा किया जा रहा है ! क्या ढकासला है !

और, उसकी कल्पना एक दूसरा ही कोमल स्वप्न देखने लगती—

धीरे-धीरे यह चर्चा महाराज के कानों तक पहुँची कि नीहार अपने घर में एक महल बना रहा है—एक छोटा-सा नमूना। लोग राजप्रासाद के और इसके सौन्दर्य की तुलना करने लगे हैं कि वह इसके आगे कुछ भी नहीं; इसकी चारुता और कौशल अपूर्व हैं। नगर भर में इसकी धूम थी।

अधीश्वर की भावना को चोट लगी। जिस मूर्ति को वह स्थापना कर रहे थे उस पर जैसे किसी ने आघात किया हो।

परन्तु वे ज्वलन प्रकृति के न थे, उनके हृदय में उसे देखने की इच्छा जाग उठी ।

उनके हृदय में कला का जो राजस प्रेम था, वह उन्हें प्रेरित करने लगा । क्योंकि, उनसे कहा गया था कि जिस समय वह काम करने लगता है, मग्न हो जाता है, कहाँ क्या हो रहा है, इसकी खबर ही नहीं रह जाती । उसके चारों ओर देखनेवालों की भीड़ लगी रहती है । किन्तु, इससे क्या ! वह ज्यों का त्यों अपने विनोद में लगा रहता है । वे इस तल्लीनता को देखने के लिये उत्सुक हो उठे, अपने को रोक न सके ।

एक दिन वे चुपचाप नीहार के यहाँ पहुँचे । दर्शक-समूह सम्राट् को देखकर खड़बड़ाया किन्तु उनके एक इंगित से सब जहाँ के तहाँ शांत हो गये । चुपचाप सम्मान-पूर्वक उन्हें रास्ता दे दिया ।

कलावन्त की उस तन्मयता, उस लगन, उस समाधि के देखने में मनुष्य स्वयं तमाशा बन जाता था । महाराज भी वैसे हो रह गये । जिस प्रकार अचेतन यन्त्र, चेतन बन कर काम करने लगता है उसी प्रकार यह चेतन, अचेतन यन्त्र होकर, अपनी धुन में लगा हुआ था । उसकी कामना के प्राबल्य ने चेतन-अचेतन का भेद मिटा दिया था—तभी न वह पत्थर में जान डाल सकता था ।

सम्राट् का स्वप्न विकीर्ण हो गया, जैसे गुलाब पंखड़ियाँ अलग-अलग होकर उड़-पुड़ जाती हैं । जिस प्रकार शुक्ति में रजत का भ्रम उसी समय तक रहता है जब तक वास्तव रजत सामने नहीं आ जाता, उसी प्रकार अपने प्रासाद के सम्बन्ध में वे जिस कला-आभास से अभिभूत हो उठे थे, यह प्रकृत कला दीख पड़ते ही बह जाने कहाँ विलीन हो गया ।

विजृम्भा की मूर्ति बने सम्राट् उसे देख रहे थे कि नीहार

क्षणेक के लिये किसी कारण अपनी उस निद्रा से जगा। उसकी दृष्टि उन पर पड़ी—

उस समय उसके हृदय में बड़ा हर्ष हुआ। उसने अपने इस निरुद्देश्य निर्माण का फल-सा पा लिया और वह सम्राट् के चरणों में भक्तिभाव से नत हुआ।

सम्राट् ने उसे उठाकर अपने उन्मुक्त हृदय से लगा लिया। कह उठे—“वाह ! यहाँ तो पत्थर एक स्निग्ध-हृदय से एकतानता करके मोम बन गया है। नीहार ! तू धन्य है। निःसन्देह किसी शाप-वश पृथ्वी पर आया है, तभी तो यह वैजयन्त प्रासाद यहाँ निर्मित हुआ है।”

“नरेन्द्र ! आप ही यह रहस्य जानें”—विनीत शिल्पी ने अपनी लघुता व्यक्त करके कहा।

“तो अब इसका निर्माण इसके रूप-सरूप के अनुसार होने दे—वह राज-भवन न बन कर यही बनेगा।”

“जो आज्ञा”—कह कर वह पुनः नत हुआ।

महाराज ने महास्थपति को बुलाने की आज्ञा दी।

हरकारे दौड़े और बात कहते-वह महाराज के सामने उपस्थित किया गया। नीहार की कृति पर उसकी निगाह पड़ी, साथ ही मुँह बिचक गया। महाराज ने उस ओर इशारा करके कहा—“देखा ?”

महास्थपति नम्र शीर्ष देखने लगा, किन्तु चेहरे पर की शिकन उग्रों को त्यों कायम रही।

सम्राट् ने पूछा—“क्यों, कैसा है ?”

“कैसे कहूँ।”

“क्यों, संकोच क्या है ?”

“यह देव तो पसन्द जो आ चुका है।”

“तो उससे क्या हुआ”—सम्राट् ने साहस बँधाते हुए

कहा—“तुम अपनी स्पष्ट राय दो।”

“एक खिलवाड़ है।”—नाक सिकोड़ कर उसने कहा।

“तभी तो इतना आकर्षक है।”

“किन्तु निरर्थक तो है स्वामी।”

“नहीं, रहस्यमय कह सकते हो। निरर्थक तो कोई वस्तु नहीं। जिसे हम नहीं समझ पाते, उसे निरर्थक कह बैठते हैं।”

“हाँ भगवन् ! किन्तु, यदि वही रहस्य दुरूह हो जाता है तो व्यर्थ अवश्य हो जाता है—चाहे निरर्थक न हो।”

“किन्तु, यहाँ तो उसका गूढ़ हो जाना आवश्यक था; वही तो कला है।”

“सेवक की समझ में यह न आया।”

“सुनो ! केवल सौन्दर्य की अभिव्यक्ति तो इसके निर्माता का उद्देश्य हुई नहीं। उसे तो एक वास्तु—निवास-स्थान—की रचना करनी थी, किसी सम्राट की पद मय्यादा के अनुरूप। अतएव ऐसे भवन के लिये जितने अलंकरण की अपेक्षा थी उसकी इसमें तनिक भी कसर नहीं। किन्तु वहीं तक बस। उससे एक रेखा भी अधिक नहीं क्योंकि घर तो घर; चाहे कुटी हो वा राजमहल; उसका प्रधान उपयोग तो यही है न कि उसमें जीवन बहारा ले और फूले फले—पंखी अपना नीड़ भी तो इसी सिद्धांत पर बनाता है; वह मृग-मरीचिका की तड़क-भड़क वाला पिण्ड नहीं बनाता जो जीवन को बन्दी करके ग्रस लेता है। तुम्हारे और उसके कौशल में भी वही अन्तर है। केवल बाहरी आकर्षण होना ही कला नहीं। उसका रूप प्रसंग के अनुकूल होना ही उसकी चारुता है।”

“ताथ, अपने नन्देपन के कारण यह ऐसा जान पड़ता है।”

—नम्रता दिखाते हुए उसने सीख दी।

“अजी, यह न कहो ! विशालता तो ऐसी वस्तु है कि वह

बहुतेरे दोषों को दाब लेती है। यह नमूना जब पूरे पैमाने पर बनेगा तो और भी खिल उठेगा। तो भी”—उन्होंने हँसकर कहा—“यदि तुम्हारे जान, यह अपने नन्देपन के कारण ही इतना रुचिर है तो मैंगाओ अपना महल वाला, वह नन्हा नमूना। दोनों को सामने रख कर तुलना हो जाय !”

महास्थपति से इसका कोई उत्तर न बना, क्योंकि अब वह जान गया था कि महाराज में जो निगाहदारी ऊँच रही थी उसे कला की इस प्रकृत वस्तु ने पूर्णतः जगा दिया है; अतः वे मेरी आलोचना की पोल भली-भाँति समझ रहे हैं। इस कथोपकथन के बीच-बीच में वह महाराज की निगाह बचाकर क्षुब्ध दृष्टि से नीहार को भी देखता जाता था। किन्तु अब उसकी वह दृष्टि नीहार पर नहीं पड़ रही थी—अब नत होकर पृथ्वी से करुणा की यात्रा कर रही थी।

यह दृशा देखकर नीहार से न रहा गया—महाराज से उसने कुछ निवेदन करने की आज्ञा ली।

उसने बड़ी शिष्टता से कहा—“देव, वे आचार्य हैं, मैं उनकी चरण-धूलि के समान भी नहीं। उनकी और मेरी कृति की तुलना न्याय नहीं है—मल्लयुद्ध में बराबर के जोड़ छोड़े जाते हैं !”

“परन्तु यह तो प्रतिभा की तुलना है जो अपने विकास से छोटे को भी बड़े के बराबर बैठा देता है।” महाराज ने गम्भीर होकर कहा। और, महास्थपति को देखने लगे।

“किन्तु”—नीहार दृढ़ता से बोला—“इस प्रसंग में तो एक और सूक्ष्म विचार है जो इसका मूल कारण है। यदि श्रीमान् उसे सुन लेंगे तो यहो आदेश देंगे कि इन दोनों रचनाओं की तुलना उचित नहीं।”

“वह क्या ?”—महाराज ने उत्सुकता से पूछा।

“यही कि”—कलावन्त के मुँह पर मुसकान थी, किन्तु इस प्रसंग से नहीं, वही जो उस पर सहज खेला करती थी--“यह कल्पना ‘स्वान्तस्सुखाय’ उपजी है, और वह ‘हुकुम पाइ’ उपजाई गई है। देव कोई फर्माइश मुझे भी दें तो मेरी कलाई आप ही खुल जाय !”

“बस, बस, अपने महास्थपति को तो तुमने परास्त किया ही था, अपने महाराज को भी हरा दिया !”--प्रसन्नता से गद्गद सम्राट् ने कहा।

उसके लिये, उनकी आँखों में स्नेह झलक रहा था और महास्थपति की दृष्टि में आसीस--केवल आसीस ही नहीं वन्दना भी--उमड़ी पड़ती थी।

अकबरी लोटा

[श्री अन्नपूर्णानन्दजी]

लाला भाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेगी बाज़ार में मकान था। नीचे की दुकानों से एक सौ रुपये मासिक के करीब किराया उतर आता था। कच्चे-बच्चे अभी थे नहीं, सिर्फ दो प्राणी का खर्च था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ आँख सेकने के लिये भी न मिलते थे।

इसलिये जब उनकी पत्नी ने एक दिन यकायक ढाई-सौ रुपए की मांग पेश की तब उनका जी एक चार जोर से सन-सनाया और फिर बैठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो बिलाने जा रहा है। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी ने कहा—“डरिये मत आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ।”

लाला भाऊलाल इस मोठा मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किंचित रौब के साथ कहा—“अजी हटो ! ढाई सौ रुपए के लिये भाई से भीख माँगोगी ! मुझ से ले लेना।”

“लेकिन मुझे इसी जिन्दगी में चाहिये।”

“अजी इसी सप्ताह में ले लेना।”

“सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से ?”

लाला म्हाऊलाल ने रौब के साथ खड़े होते हुए कहा—
“आज से सातवें दिन मुझ से ढाई-सौ रुपए ले लेना।”

“मर्द की एक बात !”

“हाँ जी, हाँ ! मर्द की एक बात।”

लेकिन जब चार दिन ज्यों-त्यों में यों ही बीत गये और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका, तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था, अपने ही घर में अपनी साख का था। देने का पक्का वादा करके अगर अब न दे सके तो मन में वह क्या सोचेगी ? उसकी नज़रों में उनका क्या मूल्य रह जायगा, अपनी वाह-वाही की सैकड़ों गाथाएँ उसे सुना चुके थे। अब जो एक काम पड़ा तो चारों खाने चित्त हो रहे। यह पहिली बार उसने मुँह खोलकर कुछ रुपयों का सवाल किया था। इस समय अगर वे दुम दबा कर निकल भागते हैं तो फिर उसे क्या मुँह दिखायेंगे ? “मर्द की एक बात” यह उसका फिकरा उनके कानों में गूँज गूँज कर फिर गूँज उठता था।

रविवार, एक दिन और बीता। पाँचवें दिन घबरा कर उन्होंने पं० बिलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनायी। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि बिलवासी जी भी उस समय बिल्कुल खुश थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास है तो नहीं पर मैं कहीं से भाँग-जाँच कर लाने की कोशिश करूँगा और अगर मिल गया तो कल शाम को तुम से मकान पर मिलूँगा।

यही शाम आज थी। हफ्ते का अन्तिम दिन। कल ढाई-सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी ठेकड़ी से हाथ धोना है। यह सच है कि कल रुपया न पाने पर उनकी स्त्री उन्हें डामल-फाँसी न कर देगी—केवल ज़रा-सा हँस देगी। पर वह कैसी

हँसी होगी। इस हँसी को कल्पना मात्र से लाला झाऊलाल की अन्तरात्मा में मरोड़ पैदा हो जाता था।

अभी पंच बिलवासी मिश्र भी नहीं आये। आज शाम को उनके आने की बात थी। उन्हीं का भरोसा था। यदि न आये तो ? या कहीं रुपये का प्रबन्ध वे न कर सके ?

इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल छत पर टहल रहे थे। कुछ प्यास मालूम पड़ो। उन्होंने नौकर को आवाज़ दी। नौकर नहीं था। खुद उनकी पत्नी पानी लेकर आईं। आप जानते ही हैं कि हिन्दू समाज में स्त्रियों की कैसी सोचनीय अवस्था है। पति नालायक को प्यास लगती है तो स्त्री बेचारी को पानी लेकर हाज़िर होना पड़ता है।

वे पानी तो ज़रूर लाईं पर गिलास लाना भूल गई थीं। केवल लोटा में पानी लिये हुए वे प्रकट हुईं। फिर लोटा भी संयोग से वह जो अपनी बेढंगी सूरत के कारण लाला झाऊलाल को सदा से नापसंद था। था तो नया, साल ही दो साल का बना, पर कुछ ऐसी गढ़न उस लोटे की थी कि उसका बाप डमरू माँ चिलमची रही हो।

लाला झाऊलाल ने लोटा ले लिया वे बोले कुछ नहीं, अपनी पत्नी का वे अदब मानते थे। मानना ही चाहिये। इसी को सभ्यता कहते हैं। जो पति अपनी पत्नी की पत्नी न हुआ वह पति कैसा ? फिर उन्होंने यह भी सोचा होगा कि लोटे में पानी हो तब भी गनीमत है, अभी अगर चूँकर देता हूँ तो बाल्टी में जब भोजन मिलेगा तब क्या करना बाकी रह जायगा।

लाला झाऊलाल अपना गुस्सा पीकर पानी पीने लगे। उस समय वे छत की मुँडेर के पास खड़े थे। जिन बुजुर्गों ने पानी पीने के सम्बन्ध में यह नियम बनाये थे कि खड़े-खड़े पानी न

पियो, सोते समय पानी न पियो, दौड़ने के बाद पानी न पियो, उन्होंने पता नहीं कभी यह भी नियम बनाया था या नहीं कि छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी न पियो। जान पड़ता है इस महत्त्वपूर्ण विषय पर उन लोगों ने कुछ नहीं कहा है।

इसलिये लाला भाऊलाल ने कोई बुराई नहीं की अगर वे छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। पर मुश्किल से दो एक घूँट वे पी पाये होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया।

लोटे ने न दाहिने देखा न बाँये। वह नीचे गली की ओर चल पड़ा, अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया। किसी ज़माने में न्यूटन नाम के किसी खुराफाती ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति नाम की एक चीज़ ईजाद की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय इस लोटे के पक्ष में थी।

लाला भाऊलाल को काटो तो बदन में खून नहीं। ठठेरी बाज़ार, ऐसी चलती हुई गली में, ऊँचे तिमंजिले से भरे हुए लोटे का गिरना हँसी-खेल नहीं है। यह लोटा न जाने किस अनधिकारी के खोपड़े पर काशी वास का सन्देश लेकर पहुँचेगा।

कुछ हुआ भी ऐसा ही। गली में जोर का हल्ला उठा। लाला भाऊलाल जब तक दौड़ कर नीचे उतरें तब तक एक भारी भीड़ उनके आँगन में घुस आई।

लाला भाऊलाल ने देखा कि इस भीड़ में प्रधान पात्र एक अङ्गरेज है, जो नखशिख से भीगा हुआ है और जो अपने एक

पैर को सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला झाँलाल जी ने फौरन दो और दो जोड़कर स्थिति को समझ लिया। पूरा विवरण तो उन्हें पीछे प्राप्त हुआ।

हुआ था यह कि गली में गिरने के पूर्व लोटा एक दूकान के सायबान से टकराया। वहाँ टकराकर उस दूकान पर खड़े उस अङ्गरेज को उसने सांगोपांग स्नान कराया और फिर उसी के बूट पर जा गिरा। ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तानी लोटा भी आखिर वहीं गिरा जहाँ हिन्दुस्तानी आदमी गिरते हैं।

उस अङ्गरेज को जब यह मालूम हुआ कि लाला झाँलाल ही उस लोटे के मालिक हैं तब उसने केवल एक काम किया। अपने मुँह को उसने खोल-खोल कर खुला छोड़ दिया। लाला झाँलाल को आज ही यह मालूम हुआ कि अङ्गरेजी भाषा में गालियों का ऐसा प्रकाण्ड कोष है।

इसी समय पं० बिलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही पहला काम यह किया कि उस अङ्गरेज को छोड़कर और जितने आदमी आँगन में घुस आये थे सबको निकाल बाहर किया। फिर एक कुर्सी आँगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा—“आपके पैर में शायद कुछ चोट आ गई है। आप आराम कुर्सी पर बैठ जाइये।”

साहब बिलवासीजी को धन्यवाद देते हुए बैठ गये। और लाला झाँलाल की ओर इशारा करके बोले—“आप इस शख्स को जानते हैं!” “बिल्कुल नहीं। और मैं ऐसे आदमी को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह चलतों पर लोटे से वार करे।”

“मेरी समझ में He is a dangerous criminal !” (यानी यह खतरनाक मुजरिम है ।)

“नहीं मेरी समझ में He is a dangerous lunatic !” (नहीं यह खतरनाक पागल है ।)

परमात्मा ने लाल भाऊलाल की आँखों को इस समय कहीं देखने के साथ खाने की भी शक्ति दे दी होती तो यह निश्चय है कि अब तक बिलवासी जी को वे अपनी आँखों से खो चुके होते । वे कुछ नहीं समझ पाते थे कि बिलवासी जी को इस समय हो क्या गया है ।

साहब ने बिलवासी जी से पूछा—“तो अब क्या करना चाहिये ?”

“पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट कर दीजिये, जिसमें यह आदमी फौरन हिरासत में ले लिया जाय ।”

“पुलिस-स्टेशन है कहाँ ।”

“चलिए ।”

“अभी चलो । आपकी इजाजत हो तो पहले मैं इस लोटे को इस आदमी से खरीद लूँ । क्यों जी बेचोगे ? मैं पचास रुपये तक इसके दाम दे सकता हूँ ।”

लाला भाऊलाल तो चुप रहे पर साहब ने पूछा—“इस रद्दी लोटे का आप पचास रुपये दाम क्यों दे रहे हैं ?”

“आप इस लोटे को रद्दी जानते हैं ? आश्चर्य ! मैं तो आपको एक विज्ञ और सुशिक्षित आदमी समझता था ”

“आखिर बात क्या है, कुछ बताइये भी ?”

“यह जनाब ! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है । जान क्या पड़ता है मुझे पूरा विश्वास है । यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटा है, जिसकी तलाश में संसार भर के म्यूजियम परेशान हैं ।”

“यह बात ।”

“जी हाँ अनाब ! सोलहवीं शताब्दी की बात है । बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हारकर भागा था और सिन्ध के रेगिस्तान में मारा-मारा फिर रहा था । एक अवसर पर प्यास से उसकी जान निकल रही थी । उस समय एक ब्राह्मण ने इस लोटे से पानी पिलाकर उसकी जान बचाई थी । हुमायूँ के बाद जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण का पता लगाकर उससे इस लोटे को ले लिया और इसके बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किये । यह लोटा सम्राट् अकबर को बहुत प्यारा था इसी से इसका नाम अकबरी लोटा पड़ा । वह बराबर इसी से वज्र करता था । सन् ५७ तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता है । पर इसके बाद लापता हो गया । कलकत्ते के म्यूजियम में इसका प्लास्टर का मॉडल रक्खा हुआ है । पता नहीं यह लोटा इस आदमी के पास कैसे आया ! म्यूजियम वालों को पता चले तो फैंसी दाम देकर खरीद ले जायँ ।”

इस विवरण को सुनते-सुनते साहब की आँखों पर लोभ और आश्चर्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी के आकार की हो गईं । उसने बिल-वासीजी से पूछा—“तो आप इस लोटे को लेकर क्या करियेगा ?”

“मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है ।”

“मुझे भी पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है । जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस समय मैं यही कर रहा था । उस दूकान पर से पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियाँ खरीद रहा था ।”

“जो कुछ हो लोटा मैं ही खरीदूंगा ।”

“वाह आप कैसे खरीदेंगे ? मैं खरीदूंगा । मेरा हक है ।”

“हक है ?”

“जरूर हक है । यह बतलाइये कि उस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या मैंने ?”

“आपने ।”

“वह आपके पैरों पर गिरा या मेरे !”

“आपके ।”

“अँगूठा उसने आपका भुरता किया या मेरा ?”

“आपका ।”

“इस लिये उसे खरीदने का हक मेरा है ।”

“यह सब भोल है । दाम लगाइये, जो अधिक दे वह ले जाय ।”

“यही सही । आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे, मैं सौ देता हूँ ।”

“मैं डेढ़ सौ देता हूँ ।”

“मैं दो सौ देता हूँ ।”

“अजी मैं ढाई-सौ देता हूँ ।”—यह कह बिलवासीजी ने ढाई सौ के नोट लाला भाऊलाल के आगे फेंक दिये ।

साहब को भी अब ताव आ गया । उसने कहा—“आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पाँच-सौ देता हूँ । अब चलिये ?”

बिलवासीजी अफसोस के साथ अपने रुपये उठाने लगे, मानो अपनी आशाओं की लाश उठा रहे हों । साहब की ओर देखकर उन्होंने कहा—“लोटा आपका हुआ, ले जाइये मेरे पास ढाई सौ से अधिक है नहीं ।”

यह सुनना था कि साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की कूँची

फिर गई। उसने झपट कर लोटा उठा लिया और बोला—“अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा। मेजर डगलस की ढोंग सुनते-सुनते मेरे कान पक गये थे।”

“मेजर डगलस कौन हैं ?”

“मेजर डगलस मेरे पड़ोसी हैं। पुरानी चीजों के संग्रह करने में मेरी उनकी दौड़ रहती है। गत वर्ष वे हिन्दुस्तान आये थे और यहाँ से “जहाँगीरी अण्डा” ले गये थे।

जहाँगीरी अण्डा ! जहाँगीरी अण्डा ! मेजर डगलस ने समझ रक्खा था कि हिन्दुस्तान से वे ही अच्छी चीज ले जा सकते हैं।”

“पर जहाँगीरी अण्डा है क्या ?”

“आप जानते होंगे कि एक कबूतर ने नूरजहाँ से जहाँगीर का प्रेम कराया था। जहाँगीर के पृथ्वी पर कि मेरा एक कबूतर तुमने कैसे उड़ जाने दिया, नूरजहाँ ने उसके दूसरे कबूतर को भी उड़ाकर बताया कि ऐसे। उसके इस भोलेपन पर जहाँगीर सौ जान से निछावर हो गया, उसी क्षण से उसने अपने को नूरजहाँ के हाथों में बय कर दिया। कबूतर का एहसान वह नहीं भूला। उसका एक अण्डे को बड़े जतन से रख छोड़ा। एक बिल्लोर की ढाँडी में वह उसके सामने टँगा रहता था। बाद में वही अण्डा जहाँगीरी अण्डा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी को मेजर डगलस ने पारसाल दिल्ली में एक मुसलमान सज्जन से तीन सौ रुपये में खरीदा।”

“यह बात !”

“हाँ, पर अब वे मेरे आगे दून की नहीं ले सकते। मेरा अकबरी लोटा उनके जहाँगीरी अण्डे से भी एक पुश्त पुराना है।”

“इस रिश्ते से तो आपका लोटा उस अण्डे का बाप हुआ।”

साहब ने लाला भाऊलाल को पाँच सौ रुपये देकर अपनी राह ली। लाला भाऊलाल का चेहरा इस समय देखते बनता था। जान पड़ता था कि मुँह पर छः दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी के एक-एक बाल मारे प्रसन्नता के लहरा रहे हैं। उन्होंने पूछा—
“बिलवासीजी ! आप मेरे लिये ढाई सौ रुपया घर से लेकर चले थे ? पर आपके पास तो था नहीं।”

“इस भेद को मेरे सिवाय मेरा ईश्वर ही जानता है। आप उसी से पूछ लीजिये। मैं नहीं बताऊँगा।”

“पर आप चले कहाँ ? अभी मुझे आपसे काम है; दो घण्टे तक।”

“दो घण्टे तक !”

“हाँ और क्या ! अभी मैं आपकी पीठ ठोंककर शाबाशी दूँगा; एक घण्टा इसमें लगेगा फिर गले लगाकर धन्यवाद दूँगा, एक घण्टा इसमें भी लग जायगा।”

“अच्छा पहले अपने पाँच सौ रुपये गिनकर सहेज लीजिये।”

रुपया अगर अपना हो तो उसे सहेजना एक ऐसा सुखद और सम्मोह कार्य है कि मनुष्य उस समय सहज में ही तन्मयता प्राप्त कर लेता है। लाला भाऊलाल ने अपना काय समाप्त करके ऊपर देखा। पर बिलवासीजी इस बीच अन्तर्धान हो गये थे।

वे लम्बे डग मारते हुए गली में चले जा रहे थे।

उस दिन रात्रि में बिलवासीजी को देर तक नींद नहीं आई। वे चादर लपेटे चारपाई पर पड़े रहे। एक बजे वे उठे। धीरे से, बहुत धीरे से, अपनी सोई हुई पत्नी के गले से उन्होंने

सोने की वह सिकड़ी निकाली जिसमें एक ताली बँधी हुई थी। फिर उसके कमरे में जाकर उन्होंने उस ताली से सन्दूक खोली। उसमें ढाई सौ के नोट ज्यों के त्यों रख कर उन्होंने उसे बन्द कर दिया। फिर दबे पाँव लौटकर ताली को उन्होंने पूर्ववत् अपनी पत्नी के गले में डाल दिया। इसके बाद उन्होंने हँस कर अँगड़ाई ली, अँगड़ाई लेकर लेट रहे, और लेट कर मर गये।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे तक वे मरे रहे।



शत्रु

[श्री अज्ञेय]

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा—“ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।”

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अन्धकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुना कर कहने लगा—“मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ, भगवान का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।”

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो ! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

×

×

×

×

आखिर तज्ञ आकर वह एक अंधेरी गली में छिपकर बैठ

गया, और सोचने लगा । उसने निश्चय किया कि मानव जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा ।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण-क्रन्दन की आवाज सुनी । उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है ।

ज्ञान ने पूछा—“बहन, क्यों रोती हो ?”

उस स्त्री ने कहा—“मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था । जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया । मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है ।”

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया । उसने कहा—“तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ।” और उसे अपने साथ ले गया ।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया । उसने कहा—“धर्म झूठा बन्धन है । परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है । धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग रखता है, अतः हमारा शत्रु है !”

लेकिन किसी ने कहा—“जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृत औरत को अपने साथ रखता है, उसको बात हम क्यों सुनें ? वह समाज से पतित है, नीच है ।”

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया ।

×

×

×

×

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने में पहले समाज से लड़ना है । जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता ।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा । वह कहने लगा—“ये धर्मध्वजी, ये पोंगे-पुरोहित, मुल्ला, ये कौन हैं ? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाँध रखने का ? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें ।”

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था ।

× × × ×

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था । यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं । पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा, तब.....

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा ।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया । वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने, खाकी कपड़े पहने हुए था । मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं, आँखों में एक तीखा दर्द था । उसने ज्ञान से कहा—“आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ । मैं विदेशी हूँ, आपके देश में भूखा मर रहा हूँ । कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा । आप परीक्षा लें । मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है ।”

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा—“मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ ।”

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया । बोला—“अच्छा, मैं

आपके दुःख से बहुत दुःखी हूँ। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करें। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ ?”

×

×

×

×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब नठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो वह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा.....

और उसने ‘भूख के लड़ाकों’ का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश था, अमीरों से धन छीनकर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना इत्यादि। लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़वा मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ-सा जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना बिबश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है। यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेमानी।

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो; मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ; लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा । वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रति-बिम्ब झलक रहा है मानों कह रहा है—“बस, अपने-आपसे लड़ चुके ?”

x

x

x

x

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और क़िले में चक्कर काटने लगा ।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं ।

पिंजरा

[श्री उपेन्द्रनाथ 'अशक']

शान्ति ने ऊब कर कागज के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और उठ कर अनमनी-सी कमरे में घूमने लगी। उसका मन स्वस्थ नहीं था, लिखते-लिखते उसका ध्यान बँट जाता था। केवल चार पंक्तियाँ वह लिखना चाहती थी, पर वह जो कुछ लिखना चाहती थी, उससे लिखा न जाता था। भावावेश में कुछ का कुछ लिख जाती थी। छः पत्र वह फाड़ चुकी थी, यह सातवाँ था।

घूमते-घूमते, वह चुपचाप खिड़की में जा खड़ी हुई। सन्ध्या का सूरज दूर पश्चिम में डूब रहा था। माली ने क्यारियों में पानी छोड़ दिया था और दिन भर के मुरभाये फूल जैसे जीवन-दान पाकर खिल उठे थे। हल्की-हल्की ठंडी हवा चलने लगी थी। शान्ति ने दूर सूरज की ओर निगाह दौड़ाई—पीली-पोली सुनहरी किरणें, जैसे डूबने से पहले, उन छोटे-छोटे बच्चों के खेल में जी भर हिस्सा ले लेना चाहती थीं जो सामने के मैदान की हरी-भरी घास पर उन्मुक्त खेल रहे थे। सड़क पर दो कमीन युवतियाँ हँसती, चुहलें करती, उहलती-कूदती चली जा रही थीं। शान्ति ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा और मुड़कर उसने अपने इर्द-गिर्द एक थकी हुई निगाह दौड़ाई—छत पर बड़ा पंखा धीमी आवाज से अनवरत चल रहा था। दरवाजों पर भारी पर्दे हिल रहे थे और भारी कौच और बन पर रखे हुए रेशमी गद्दे, गलीचे और दरम्यान में रखे हुए छोटे-छोटे अठकोने मेज और

उन पर पीतल के नन्हें-नन्हें हाथी और फूलदान—और उसने अपने-आपको उस पत्नी-सा महसूस किया जो विशाल स्वच्छन्द आकाश के नीचे, खुली स्वतन्त्र हवा में आम की डाली से बंधे हुए पिंजरे में लटक रहा हो ।

तभी नौकर उसके छोटे लड़के को जैसे बरबस खींचता-सा लाया । धोबी की लड़की के साथ वह खेल रहा था । आव देखा न ताव और शान्ति ने लड़के को पीट दिया—क्यों तू उन कमीनों के साथ खेलता है ! क्यों खेलता है तू ! इतने बड़े बाप का बेटा होकर ! और उसकी आवाज चीख की हद को पहुँच गई । हैरान-से खड़े नौकर ने बढ़कर जवर्दस्ती बच्चे को छुड़ा लिया । शान्ति जाकर धम से कौच में धँस गई और उसकी आँखों से अनायास ही आँसू बह निकले !

तब वहीं बैठे-बैठे उसकी आँखों के सामने अतीत के कई चित्र फिर गये !

उसके पति तब लांडरी का काम करते थे । बाइबिल सोसाइटी के सामने जहाँ आज एक दन्दानसाज बड़े धड़ल्ले से लोगों के दाँत उखाड़ने में निमग्न रहते हैं, उनकी लांडरी थी । आय अच्छी थी, पर खर्च भी कम न था । ३५ रुपया तो दूकान का किराया ही देना पड़ता था और फिर कपड़े धोने और इस्तिरी करने के लिये जो तबेला ले रखा था, उसका किराया अलग था । इसके अतिरिक्त धोबियों को वेतन, कोयला, मसाला और सौ दूसरे पचड़े ! इस सब खर्च की व्यवस्था के बाद जो थोड़ा-बहुत बचता था, उससे बड़ी कठिनाई के साथ घर का खर्च चलता था और घर उन्होंने दूकान के पीछे ही महीलाल स्ट्रीट में ले रखा था ।

महीलाल स्ट्रीट जैसी अब है वैसी ही तब भी थी । मकानों का रूप यद्यपि इन दस वर्षों में कुछ बदल गया है, किन्तु मकानों

में कुछ अधिक अन्तर नहीं आया। अब भी इस इलाके में कमीन बसते हैं और तब भी बमते थे। सोल-भरी अंधेरी कोठरियाँ चमारों, धीवरों और शुद्ध हिन्दुओं का निवासस्थान थीं। एक ही कोठरी में रसोई, बैठक, शयन-गृह—और वह भी ऐसा, जिसमें सास-ससुर, बेटा बहू, लड़कियाँ-लड़के, सब एक साथ सोते हों।

जिस मकान में शान्ति रहती थी, उसके नीचे टेंडी चमार अपने आठ लड़के-लड़कियों के साथ रहता था, दूसरी चौड़ी गली में मारवाड़ी की दूकान थी और जिधर दरवाजा था, उधर भंगी रहते थे। उनके दरवाजे से जरा ही परे भंगियों ने तंदूर लगा रखा था जिसका धुआँ सुबह-शाम उनकी रसोई में आ जाया करता था, जिससे शान्ति को प्रायः रसोई की खिड़की बन्द रखनी पड़ती थी। दिन-रात वहाँ चारपाइयाँ बिछी रहती थीं और कपड़ा बचाकर निकलना प्रायः असम्भव होता था।

गर्मियों के दिन थे और म्यूनिस्सिपैलिटी का नल काफी दूर अनारकली के पास था, इसलिये गरीब लोगों की सहूलियत के खयाल से शान्ति ने अपने पति की सिफारिश पर नीचे डेबढ़ो के नल से उन्हें पानी लेने की इजाजत दे दी थी। किन्तु जब उन्हें उस मकान में आये कुछ दिन बीते तो शान्ति को मालूम हो गया कि यह उदारता बड़ी मँहगी पड़ेगी। एक दिन जब उसके पति नहाने के बाद साबुन की डिबिया नीचे ही भूल आये और शान्ति उसे उठाने गई तो उसने उसे नदारद पाया, फिर कुछ दन बाद तौलिया गायब हो गया, और इसी तरह दूसरे-तीसरे कोई न कोई चीज गुम होने लगी। हार कर एक दिन शान्ति ने अपने पति के पीछे पड़कर नल की टोंटी पर लकड़ी का छोटा-सा बक्स लगवा दिया और चाबी उसकी अपने पास रख ली।

दूसरे दिन, जब एक ही धोती से शरीर ढाँपे वह पसीने से

निचुड़ती हुई, चूल्हे के आगे बैठी रोटी की व्यवस्था कर रही थी तो उसने अपने सामने एक काली-सी लड़की को खड़ी पाया।

लड़की उसकी समवयस्क ही थी। रंग उसका बेहद काला था और शरीर पर उसने अत्यन्त मैली-कुचैली धोती और बंडी पहन रखी थी। वह अपने गहरे कान्ते बालों में सरसों ही का तेल डालती होगी, क्योंकि उसके मस्तक पर बालों के नीचे पसीने के कारण तेल में मिली हुई मैल की एक रेखा बन रही थी। चोड़ा सा मुंह और चपटी-नी नाक ! शान्ति के हृदय में क्रोध और घृणा का तूफान उमड़ आया। आज तक घर में जमा-दारिन के अतिरिक्त नीचे रहनेवालों किसी कमीन लड़की को ऊपर आने का साहस न हुआ था और न स्वयं ही उसने किसी से बातचीत करने की काशिश की थी।

लड़की मुस्करा रही थी, और उसकी आँखों में विचित्र-सी चमक थी।

‘क्या बात है’—जैसे आँखों ही आँखों में शान्ति ने क्रोध से पूछा।

तनिक मुस्कराते हुए लड़की ने प्रार्थना की कि बीबी जी पानी लेना है।

‘हमारे नल भंगी-चमारों के लिये नहीं !’

‘हम भंगी हैं न चमार !’

‘फिर कौन हो ?’

‘मैं बीबी जी, सामने के मन्दिर के पुजारी की लड़की...’

लेकिन शान्ति ने आगे न सुना था। उसे लड़की से बातें करते-करते घिन आती थी। धोती के छोर से चाबी खोलकर उसने फेंक दी।

इस काले-कलूटे शरीर में दिल काला न था। और शीघ्र ही शान्ति को इस बात का पता चल गया। रोज ही पानी लेने के

वक्त चाबी के लिये गोमती आती। गली में पूर्बियों का जो मन्दिर था, वह उसके पुजारी की लड़की थी। अभीरों के मंदिरों के पुजारी भी मोटरों में घूमते हैं। यह मन्दिर था गरीब पूर्बियों का, जिसमें प्रायः सत्र चौकीदार, चपरासी, साईस अथवा मजदूर थे। पुजारी का कुटुम्ब भी खुली गली के एक ओर भंगियों की चारपाइयों के सामने सोता था। और जब रात को कोई ताँगा उधर गुजरता तो प्रायः किसी न किसी की चारपाई उसके साथ घसिटती हुई चली जाती। मन्दिर में कुआँ तो था, पर जब से इधर नल आया, उस पर डोर और रस्सी कभी ही रही और फिर जब समीप ही किसी की डेढ़दी के नल से पानी मिल जाय तो कुएँ पर बाजू तोड़ने की क्या जरूरत है, इसलिये गोमती पानी लेने और कुछ पानी लेने के बहाने बातें करने रोज ही सुबह-शाम आ जाती। बटलोही नल के नीचे रखकर जिसमें सदैव पान के कुछ पत्ते तैरा करते, वह ऊपर चली आती और फिर बातों-बातों में भूल जाती कि वह पानी लेने आई है और उस समय तक न उठती जब तक उसकी बुढ़िया दादी गली में अपनी चारपाई पर बैठी हुई चीख-चीख कर गालियाँ देती हुई उसे न पुकारती।

इसका यह मतलब नहीं, कि इस बीच में शान्ति और गोमती में मित्रता हो गई थी। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि शान्ति जब रसोई में खाना बनाती अथवा अन्दर कमरे में बैठी कपड़े सीती, तो उसको गोमती का सीढ़ियों में बैठकर बातें करते रहना बुरा नहीं लगता था। कई तरह की बातें होती—मुहल्ले के भंगियों की बातें, चमारों के घरेलू झगड़ों की बातें और फिर कुछ गोमती की निजी बातें। इसी बीच में शान्ति को मालूम हो गया कि गोमती का विवाह हुए वर्षों बीत चुके हैं, पर उसने अपने पति की सूरत नहीं देखी। बेकार है, इसलिए

न वह उसे लेने आता है और न उसके पिता उसे उसके साथ भेजते हैं ।

कई बार छेड़ने की गर्ज से, या कई बार मात्र आनन्द लेने की गर्ज से ही शान्ति उससे उसके पति के सम्बन्ध में और उसके अपने मनोभावों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछती । उत्तर देते समय गोमती शर्मा जाती थी ।

किन्तु इतना सब होते हुए भी उसकी जगह वहीं सीढ़ियों में ही बनी रही ।

फिर किस प्रकार पुजारी की वह काली-कलूटी लड़की वहां से उठकर, उसके इतने समीप आ गई कि शान्ति ने एक बार अनायाम आलिगन में लेकर कह दिया—आज से तुम मेरी बहन हुई गोमती—वह सब आज भी शान्ति को स्मरण था ।

सदियों की रात थी और अनारकली में सब ओर धुआं-धुआं हो रहा था । ऐसा प्रतीत होता था, जैसे लाहौर के समस्त तंदूरों, होटलों, घरों और कारखानों से सारे दिन उठनेवाले धुएँ ने सांभ होते ही इकट्ठे होकर अनारकली पर आक्रमण कर दिया हो । शान्ति अपने नन्हें को कंधे से लगाए, हाथों में कुछ हल्के-फुल्के लिफाफे थामे क्रय-विक्रय करके चली आ रही थी । वह कई दिन के अनुरोध के बाद अपने पति को इधर ला सकी थी और उन्होंने जी भर खाया-पिया और खरीद किया था । अनारकली के मध्य बंगाली रसगुल्लों की जो दूकान है, वहां से रसगुल्ले खाने को शान्ति का बड़ा मन होता था, पर उसके पति को कभी इतनी फुर्सत ही न हुई थी कि वहाँ तक सिर्फ रसगुल्ले खाने के लिए जा सके । अस्पताल रोड के सिरे पर हलवाई के साथ चाटवाले की जो दूकान है, वहां से चाट खाने को शान्ति की बड़ी इच्छा थी, पर चाट ऐसी निकम्मी चीज खाने के लिए काम छोड़कर जाने का अवकाश शान्ति के पति के पास कहां ? कई

दिनों से वह अपने उम्मी के लिए कुछ गर्म कपड़ों के टुकड़े खरीदना चाहती थी। सदी बढ़ रही थी और उसके पास एक भी कोट न था। और फिर गरम कपड़ा न सही, वह चाहती थी कि कुछ ऊन ही मोल ले लो जाय, ताकि नन्हें का स्वेटर बुन दिया जाय, पर उसके पति 'हूँ, हाँ' करके टाल जाते थे, किन्तु उस दिन वह निरन्तर महीने भर तक अनुरोध करने के बाद उन्हें अपने साथ अनारकली ले जाने में सफल हुई थी। और उस दिन उन्होंने जी-भर बंगाली के रसगुल्ले और चाटवाले की चटपटो चाट खाई थी, बल्कि घलुए में मोहन के पकौड़े और मटरोंवाले आलुओं के स्वाद भी चकखे थे। फिर उम्मी के लिए कपड़ा भी खरीदा था और ऊन भी मोल ली थी और दो आने दर्जन ब्लेडोंवाली गुडवोग की डिबिया तथा एक कालगेट साबुन की दो आनेवाली टिकिया उसके पति ने भी खरीदी थी। कई दिनों से वे उन्हीं पुराने ब्लेडों को शीशे के गिलास में तेज करके नहानेवाले साबुन से हजामत बनाते आ रहे थे और उस दिन शान्ति ने यह सब खरीदने के लिए उन्हें विवश कर दिया था। और दोनों जने यह सब खरीद कर खर्च करने के आनन्द की अनुभूति से पुलकित चले आ रहे थे।

दिसम्बर का महीना था और सूखा जाड़ा पड़ रहा था। शान्ति ने अपने सस्ते पर गरम शाल को नन्हें के गिर्द और अच्छी तरह लपेटते हुए अचानक कहा—निगोड़ा सूखा जाड़ा पड़ रहा है। सुनती हूँ नगर में बीमारी फैल रही है।

पर उसके पति झुपचाप धुएँ के कारण कड़बी हो जाने वाली अपनी आँखों को रूमाल से मलते चले आ रहे थे।

शान्ति ने फिर कहा—हमारी अपनी गली में कई लोग बीमार हो गये हैं। परसों टंडी चमार का लड़का निमोनिया से मर गया।

तभी शाल में लिपटा-लिपटा बच्चा हल्के-हल्के दो बार खौंसा और शान्ति ने उसे और भी अच्छी तरह शाल में लपेट लिया ।

उसकी बात को सुनी-अनसुनी करके उसके पति ने कहा—
आज बेहद बदपरहेजी की है, पेट में सख्त गड़बड़ी होरही है ।

घर आकर शान्ति ने जब लड़के को चारपाई पर लिटाया और मस्तक पर हाथ फेरते हुए उसके बालों को पिछली तरफ किया तो वह चौंककर पीछे हटी । उसने डगी हुई निगाहों से अपने पति की ओर देखा । वे सिर को हाथों में दबाये नाली पर बैठे थे ।

‘उम्मी का माथा तो तबे की तरह तप रहा है’—उसने बड़ी कठिनाई से गले को अचानक अवरुद्ध कर देनेवाली किसी चीज को बरबस रोक कर कहा ।

लोकन उसके पति को कै हुई ।

शान्ति का कण्ठ अवरुद्ध-सा होने लगा था और उसकी आँखें भर-सी आई थीं, पर अपने पति को कै करते देख बच्चे का खयाल छोड़ वह उनकी ओर भागी । पानी लाकर उनको बुल्ला कराया । निढाल-से होकर वे चारपाई पर पड़ गये पर कुछ ही क्षण बाद उन्हें फिर कै हुई ।

शान्ति के हाथ पांव फूल गये । घर में वह अकेली । सास, मा पास नहीं, कोई दूसरा नाता रिश्ता भी समीप नहीं और नौबर—नौकर रखने की गुंजाइश ही कभी नहीं निकली । वह कुछ क्षण के लिए घबरा गई । एक उड़ी-उड़ी-सी दृष्टि उसने अपने ज्वर से तपते हुए बच्चे और बदहजमी से निढाल पति पर डाली । अचानक उसे गामती का खयाल आया । शान्ति अकेली कभी गली में नहीं उतरी थी, पर सब संकोच छोड़ रह भागी-भागी नीचे गई । अपनी कोठरी के बाहर, गली की ओर, मात्र

ईंटों के छोट्टे-से पर्दे की ओट से बने हुए रसोईघर में बैठी गोमती रोटी बेल रही थी और चूल्हे की आग से उसका काला मुख चमक-सा रहा था। शान्ति ने देखा—उसका बड़ा भाई अभी खाना खाकर उठा है। तब आगे बढ़कर उसने इशारे से गोमती को बुलाया। तब को नीचे उतार और लकड़ी को बाहर खींचकर गोमती उसी तरह भागी आई। तब विनीत भाव से संक्षेप में शान्ति ने अपने पति तथा बच्चे की हालत का उल्लेख किया और फिर प्रार्थना की कि वह अपने भाई से कहकर तत्काल किसी डाक्टर को बुला दे। उनकी लांडरी के साथ हो जिस डाक्टर की दुकान है, वह सुना है पास ही लाजपत रोड पर रहता है, यदि वह आ जाय तो बहुत ही अच्छा हो। और फिर साड़ी के छोर से पाँच रुपये का एक नोट खोलकर शान्ति ने गोमती के हाथ में रख दिया कि पीस पहले ही क्यों न देनी पड़े, पर डाक्टर को ले अवश्य आये। और फिर चलते-चलते उसने यह भी प्रार्थना की कि रोटी पकाकर सम्भव हो तो तुम ही जरूर आ जाना, उम्मी.....।

शान्ति का गला भर आया था। गोमती ने कहा था—आप घबरायें नहीं, मैं अभी भाई को भेज देती हूँ और मैं भी अभी आई और यह कहकर वह भागती-सी चली गई थी।

शान्ति वापस मुड़ी, तो साढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते उसने महसूस किया कि शंका और भय से उसके पांव कांप रहे हैं और उसका दिल धक-धक कर रहा है।

ऊपर जाकर उसने देखा—उसके पति ऊपर से उतर रहे हैं। हाथ में उनके खाली लोटा है, चेहरा पड़ले से भी पीला हो गया है, और माथे पर पसीना छूट गया है।

शान्ति के उड़े हुए चेहरे को देखकर उन्होंने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—घबराओ नहीं, सर्दियों में हैजा नहीं होता।

शान्ति ने रोते हुए कहा—आप ऊपर क्यों गये, वहाँ नाली पर बैठ जाते। किन्तु जब पति ने नाली की ओर और फिर चार-पाई पर पड़े हुए बौमार बच्चे की ओर इशारा किया, तो शान्ति चुप हो गई। उसने पहले सहारा देकर पति को बिस्तर पर लिटाया फिर नाली पर पानी गिराया, फिर दूसरे कमरे में बिस्तर बिछा, बच्चे को उस पर लिटा आई। तभी गोमती आ गई। खाना तो सब खा चुके थे, अपने हिस्से का आटा उठा, आग बुझा, वह भाग आई थी।

शान्ति ने कहा—मैं उम्मी को उधर कमरे में लिटा आई हूँ। मुझे डर है उसे सर्दी लग गई है। सांस उसे और भी कठिनाई से आने लगी है और खाँसी भी बढ़ गई है। निचली कोठरी में पड़े हुए मुराने लिहाफ से कपड़े ले लो और अँगीठी में कोयले डाल उसकी छाती पर जरा उससे सेंक दो। इनके पेट में गड़बड़ है। मैं इधर इसका कुछ उपचार करता हूँ। कुछ नहीं तो गरम पानी करके बातल ही फेरती हूँ।

गोमती ने कहा—इन्हें बीबी जी कोई हाजमे की चीज दो। हमारे घर तुम्मे की अजवाइन है ! मैं उसमें से कुछ लेती आई हूँ, जब तक डाक्टर आये, उसे ही जरा गरम पानी से इन्हें दे दो।

बिना किसी तरह की हिचकिचाहट के शान्ति ने मैली-सी पुड़िया में बँधी काली-सी अजवाइन ले ली थी और गोमती अँगीठी में कोयले डाल नीचे कपड़े लेने भाग गई थी।

बाहर शाम बढ़ चली थी। वहाँ कमरे के अँधेरे में बंठे-बैठे शान्ति की आँखों के आगे चिन्ता और फिक्र के वे सब दिन-रात फिर गये। उनके पति को हैजा तो न था, किन्तु गैस्ट्रो ऐन्टराइटिस (Gastroenteritis) तीव्र क्रिस्म का था। डाक्टर के आने तक शान्ति ने गोमती के कहने पर उन्हें तुम्मे की अजवाइन दी

थो, प्याज भी सुंघाया था और गोमती अँगोठी उठाकर दूसरे कमरे में बच्चे की छाती पर सेंक देने चली गई थी। डाक्टर के आने पर मालूम हो गया था कि उसे निमोनियाँ हो गया है और अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है।

शान्ति अपने पति और अपने बच्चे; दोनों की एक साथ कैसे तोमारदारी करती, उसने अपनी विवशता से गोमती की ओर देखा था। पर उसे होंठ हिलाने की जरूरत न पड़ी थी, बच्चे की सेवा-शुश्रूषा का समस्त भार गोमती ने अपने कन्धों पर ले लिया था। शान्ति को मालूम भी न हुआ था कि वह कब घर जाती है, कब घरवालों को खाना खिलाती है या खाती है या खिलाती-खाती भी है या नहीं। उसने तो जब देखा, उसे छाया की भाँति बच्चे के पास पाया। कई दिन तक एक ही जून खाकर गोमती ने बच्चे की तीमारदारी की थी।

दोपहर का समय था, उसके पति दूकान पर गये हुए थे। उम्मी को भी अब आराम था और वह उसकी गोद से लगा सोया पड़ा था और उसके पास ही फर्श पर टाट बिछाये गोमती पुराने ऊन के धागों से स्वेटर बुनना सोख रही थी। इतने दिनों की थकी-हारी उनींदी शान्ति की पलकें धीरे-धीरे बन्द हो रही थीं, वह उन्हें खोलती थी पर वे फिर बन्द हो हो जाती थीं। आखिर वह वैसे ही पड़ी-पड़ी सो गई थी। जब वह फिर उठी तो उसने देखा, उम्मी रो रहा है, और गोमती उसे बड़े प्यार से सुरीली आवाज में थपक-थपक कर लोरी दे रही है। शान्ति ने फिर आँखें बन्द कर लीं। उसने सुना गोमती धीमे-धीमे स्वर से गा रही थी—

आ री कक्को, जा री कक्को, जंगल पक्को बेर
भय्या हाथे देला, चिड़ैया उड़े जा !

और फिर :

आ री चिड़ैया ! दो पप्पड़ पकाए जा !

भय्या हाथे ढेला, चिड़ैया उड़े जा !

बच्चा चुप कर गया था। लोरी खत्म करके उसने बच्चे को गले से लगाकर चूम लिया। शान्ति ने अर्ध-निमीलित आँखों से देखा, बच्चे के पीले जर्द सूखे से मुख पर गोमती का काला स्वस्थ मुख भुका हुआ है। मुख के आँसू उसकी आँखों में उमड़ आये। उसने उठ कर गोमती से बच्चे को ले लिया था और जब वह फिर टाट पर बैठने लगी थी तो दूसरे हाथ से शान्ति ने उसका हाथ पकड़ चारपाई पर बिठाते हुए, उसे अपने बाजू से बांध लिया था और कहा था—आज से तुम मेरी बहिन हुई गोमती !

आँखें बन्द किये शान्ति इन्हीं स्मृतियों में गुम थी, उसकी आँखों से चुपचाप आँसू बह रहे थे कि अचानक उसके पति अन्दर दाखिल हुए। किसी जमाने में लांडरी चलाने वाले और समय पड़ने पर, स्वयं अपने हाथ से इस्त्री गरम करके कपड़ों को प्रेस करने में भी हिचकिचाहट न महसूस करने वाले ला० दीन-दयाल और लाहौर की प्रसिद्ध फर्म 'दीनदयाल एन्ड सन्स' के मालिक प्रख्यात शेयर ब्रोकर लाला दीनदयाल में महान् अन्तर था। इस दस वर्ष के अर्से में उनके बाल यद्यपि पक गये थे, किन्तु शरीर कहीं अधिक स्थूल हो गया था। ढाले-ढाले और प्रायः लांडरी के मालिक होते हुए भी मैले कपड़े पहनने की जगह अब उन्होंने अत्यन्त बढ़िया किस्म का रेशमी सूट पहन रखा था और पाँवों में स्वेत रेशमी जुरावे तथा काले सेंडल पहने हुए थे।

शान्ति ने झट रूमाल से आँखें पोंछ लीं।

बिजली का बटन दबाते हुए उन्होंने कहा—यहाँ अन्धेरे में क्या पड़ी हो। उठो बाहर बाग में घूमो-फिरो और फिर बोले—

इन्द्रानी का फोन आया था कि बहिन यदि चाहें तो आज सिनेमा देखा जायें ।

बहिन—दिल ही दिल में विषाद से शान्ति मुस्करायी और उसके सामने एक ओर काली-कलूटी-सी लड़की का चित्र खिंच गया जिसे कभी उसने बहिन कहा था । किन्तु प्रकट उसने सिर्फ इतना कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं !

मुँह फुलाये हुए ला० दीनदयाल बाहर चले गये ।

तब आँखों को फिर एक बार पोंछ कर और तनिक स्वस्थ होकर, शान्ति मेज के पास आई और कुर्मी पर बैठ, पैड अपनी ओर को खिसका, कलम उठा कर उसने लिखा—
बहिन गोमती,

तुम्हारी बहिन अब बड़ी बन गई है । बड़े आदमी की बीबी है । बड़े आदमियों की बीबियाँ अब उपकी बहनें हैं । पिंजरे में बन्द पक्षी को कब इजाजत होती है कि स्वच्छन्द, स्वतन्त्र विहार करनेवाले अपने हमजोलियों से मिले ? मैंने तुम्हें कल फिर आने के लिये कहा था, पर अब तुम कल न आना । अपनी इस बंदिनी बहिन को भूलने की कोशिश करना । —शान्ति

इस बार उसने एक पंक्ति भी नहीं काटी और न कागज ही फाड़ा । हाँ, एक बार लिखते-लिखते फिर आँखें भर आने से जो एक-दो आँसुओं को बूंदें पत्र पर अनायास ही गिर पड़ी थीं, उन्हें उसने ब्लाटिंग पेपर से सुखा दिया था । फिर पत्र को लिफाफे में बन्द करके उसने नौकर को आवाज दी और उसके हाथ में लिफाफा देकर कहा कि महीलाल स्ट्रीट में पूर्वियों के मन्दिर के पुजारो को लड़की गोमती को दे आये । और फिर समझाते हुए कहा—गोमती, कुछ ही दिन हुए अपनी ससुराल से आई है ।

पत्र लेकर नौकर चला ही था कि शान्ति ने उसे फिर आवाज

दो और पत्र उसके हाथ से लेकर फाड़ डाला। फिर धीरे से उसने कहा—तुम गोमती से कहना कि बीबी अचानक आज मैके जा रही हैं और दो महोने तक वापस न लौटेंगी।

यह कहकर वह फिर खिड़की में जा खड़ी हुई और अस्त हो जानेवाले सूरज के स्थान पर ऊपर की ओर बढ़ते हुए अँधेरे को देखने लगी।

बात इतनी ही थी कि आज दोपहर को जब वे ब्रिज खेल रहे थे तब नौकर ने आकर ग्यबर दो थी कि महीलाल स्ट्रीट के पुजारी की लड़की गोमती आई है। तब खेल को बीच ही में छोड़कर और भूलकर कि उसके पार्टनर राय साहब लाला बिहारीलाल हैं, वह भाग गई थी और उसने गोमती को अपनी मुजाओं में भोंच लिया था और फिर वह उसे अपने कमरे में ले गई थी, तब दोनों बहुत देर तक अपने दुःख-सुख की बातें करती रही थीं। शान्ति ने जाना था कि किस प्रकार गोमती का पति काम करने लगा, उसे ले गया और उसे चार बच्चों की मा बना दिया और गोमती ने उम्मी का और दूसरे बच्चों का हाल पूछा था। ला० दीनदयाल इस बीच में कई बार बुलाने आये थे, पर वह न गई थी और जब दूसरे दिन आने का वादा लेकर उसने गोमती को बिदा किया था तो उसके पति ने कहा था—तुम्हें शर्म नहीं आती, उस उजड़ और गँवार औरत को लेकर तुम बैठी रहो, तुम्हें मेरी इज्जत का जरा भी खयाल नहीं। उसे बगल में लिये उन सब के सामने से गुजर गईं। राय साहब और उनकी पत्नी हँसने लगे और आखिर प्रतीक्षा कर करके चले गये.....।

इसके बाद उन्होंने और भी बहुत कुछ कहा था, लेकिन शान्ति ने तो फेंसला कर लिया था कि वह पिंजरे को पिंजरा हो समझेगी और उड़ने का प्रयास न करेगी।

